राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पुरातत्त्वाचार्य जिनविजय मुनि

[सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर]



– ग्रन्थाङ्क १७ –

अज्ञातकर्तृकः

नृत्तसङ्ग्रहः



— प्रकाशक —

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(Rajasthan Oriental Research Institute)

जयपुर (राजस्थान)

वि० सं० २०१३] प्रति ७५० [मूल्य रू० 10/=

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पुरातत्त्वाचार्य जिनविजय मुनि

[सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर]



– ग्रन्थाङ्क १७ –

अज्ञातकर्तृकः

नृत्तसङ्ग्रहः



— प्रकाशक —

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(Rajasthan Oriental Research Institute)

जयपुर (राजस्थान)

वि० सं० २०१३] प्रति ७५० [मूल्य रू० 10/=

RĀJASTHĀNA PURĀTANA GRANTHAMĀLĀ
Published by the Government of Rajasthan
A Series devoted to the Publication of Sanskrit, Prakrit, Apabhraṁśa,
Old Rajasthani-Gujarati and Old Hindi works pertaining to
India in general and Rajasthan in particular.

*

General Editor
Acharya JINA VIJAYA MUNI, Puratattvacharya
Honorary Member of the German Oriental Society, Bhandarkar Oriental
Research Institute, Poona and Gujarat Sahitya Sabha, Ahmedabad.
Honarary Director, Rajasthan Oriental Research Institute.

No. 17

NṚTTA SAMGRAHA

(A small treatise on the art of dancing)

*

edited by
Prof. Dr. PRIYABALA SHAH
M. A. Ph. D. (Bombay) D. Litt (Paris)
(Head of the Department of Ancient Indian
Culture : Ramanand Arts College, Ahmedabad.)

Rajasthan Oriental Research Institute
Jaipur

1956

अज्ञातकर्तृकः

नृत्तसङ्ग्रहः



सम्पादिका

डॉ. प्रियबाला शाह, एम्. ए. पीएच्. डी. (बंबई)
डि. लिट् (पेरिस)

(प्राध्यापक, रामानन्द आर्टस् कॉलेज, अहमदाबाद)



—: प्रकाशनकर्ता :—

राजस्थान-राज्याज्ञानुसार

संचालक-राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर

(Rajasthan Oriental Research Institute)

जयपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०१३] प्रथमावृत्ति ★ मूल्य रू० [खिस्ताब्द १९५६

प्रकाशक –
संचालक – राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर, के आदेशानुसार – गोपालनारायण बोहरा ।
मुद्रक –
जयन्ति दलाल, वसंत प्रिन्टींग प्रेस, घीकांटा रोड, अहमदावाद ।
और
मुकुन्द के. शास्त्री, इला प्रिन्टरी (वल्लभ मुद्रणालय) पानकोर नाका, अहमदावाद ।

प्रधान संपादकीय वक्तव्य

*

राजस्थान और गुजरात, मालवा आदि प्रदेशोंमें प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंके विखरे हुए एवं जीर्णशीर्ण दशामें जो संग्रह प्राप्त होते हैं उनमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं प्राचीन राजस्थानी-गुजराती भाषामें रचित छोटी बडी ऐसी सेंकडो ही साहित्यिक कृतियां उपलब्ध होती हैं जो अभीतक प्रायः अज्ञात और अप्रसिद्ध हैं। विद्वानोंका लक्ष्य प्रायः अभीतक उन्हीं सुप्रसिद्ध और सुज्ञात ग्रन्थोंके अन्वेषण एवं संशोधनकी तरफ रहा है जो यत्रतत्र यथेष्ट प्रमाणमें उपलब्ध होते हैं। ग्रन्थोंके संपादन और प्रकाशन के विषयमें भी प्रायः यही प्रथा चली आ रही है। सुप्रसिद्ध और सुज्ञात ग्रन्थोंके सिवा छोटी छोटी एवं प्रकीर्ण रचनाओंके विषयमें विद्वानोंका विशेष लक्ष्य नहीं जाता है और इसलिये अभीतक ऐसी रचनाओंके संपादन-प्रकाशनका मुख्य प्रयत्न प्रायः नहींसा हुआ है। हमारे प्राचीन इतिहास एवं सांस्कृतिक सामग्रीकी दृष्टिसे इन फुटकर रचनाओंमें जो ज्ञातव्य छिपे पडे हैं उनकी तरफ हमारा लक्ष्य बिल्कुल नहीं गया है-ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्तिकी बात नहीं होगी।

राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिरका कार्य प्रारंभ करते समय, हमारा मुख्य लक्ष्य इस प्रकारके प्रकीर्ण साहित्यका अन्वेषण, संग्रह, संरक्षण, संशोधन एवं प्रकाशन आदि करनेका रहा है और तदनुसार, राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला द्वारा ऐसी अनेकानेक साहित्यिक रचनाओंको, सुयोग्य विद्वानों द्वारा शोधित-संपादित कराकर प्रकाशमें रखनेका आयोजन हमने किया है।

इसी उद्देश्यके आधारानुसार, नृत्तसंग्रह नामक प्रस्तुत लघुकृति राज-स्थान पुरातन ग्रन्थमालाके १७ वें मणिके रूपमें प्रकाशित की जा रही है। इस कृतिकी १२ पत्रात्मक एक जीर्ण शीर्ण और अपूर्ण प्रति गुजरात विद्यासभाके संग्रहमें सुरक्षित है जो अहमदावादके 'गुजरी' नामसे पहचाने जानेवाले -सप्ताहमें एक दफह बजारके फुटपाथ पर लगनेवाले-हटवाडेमें, रद्दी कागज बेचनेवाले कबाडीके पाससे उपलब्ध हुई है। जैसा कि संपादिका विदुषीने अपनी संक्षिप्त प्रस्तावनामें सूचित किया है-इस रचनामें नृत्य-नाट्य विषयक कुछ मुख्य बातोंका वर्णन किया गया है अतः इसका नाम 'नृत्तसंग्रह' रखना समुचित समझा गया है।

इस छोटेसे ग्रन्थमें विशेष लोकप्रिय कतिपय नृत्योंके स्वरूप और प्रकारका वर्णन किया गया है जिनमें भारतके दक्षिण और उत्तर दोनों प्रदेशोंके नृत्यप्रकारोंका समावेश है। दक्षिणके मुख्य द्राविड, तैलंग और कर्णाट देश प्रचलित लोक-

नृत्तोंका, जिनमें मुख्य करके उन उन देशोंकी भाषाके गीतोंके साथ अभिनय किया जाता है, वर्णन किया गया है और उत्तर प्रदेशमें प्रचलित उन नृत्तोंका उल्लेख है जिनमें संस्कृत, मध्यदेशीय (आधुनिक हिन्दी) और पारसीक अर्थात् फारसी भाषाके गीतोंका व्यवहार होता है । यवनलोकोंमें बहुप्रिय जक्कडी नामक नृत्तका भी स्वरूप बताया गया है । ग्रन्थान्तमें पश्चिम एवं उत्तर भारतमें सुप्रसिद्ध दण्डरास (जिसको गुजरातीमें दाण्डिया रास कहते हैं) का उल्लेख किया गया है ।

इस प्रकार इस छोटेसे निबन्धमें नृत्यकलाके विशेष लोकप्रिय और लोकप्रसिद्ध प्रकारोंका सुगम और सरल संस्कृतमें जो वर्णन दिया गया है वह इस कलाके अभ्यासियोंको अवश्य मनोरंजक और ज्ञानप्रद सिद्ध होगा ।

गुजरात विद्यासभाके प्राचीन ग्रन्थ संग्रहमें अज्ञात एवं उपेक्षित रूपमें पडी हुई प्रस्तुत कृतिके अवलोकनद्वारा इसके महत्त्वको अवगत करके विदुषी डॉ. प्रियवाला शाहने इसका इस प्रकार संशोधन-संपादन कर प्रकाशमें लानेका जो प्रयत्न किया है वह अभिनन्दनीय है ।

अनेकान्त विहार
अहमदावाद.
आषाढशुक्ल ८. वि. सं. २०१३
(१५-७-५६)

मुनि जिनविजय
सम्मान्य संचालक
राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर
जयपुर

PREFACE OF THE GENERAL EDITOR

*

There are still hundreds of old manuscripts big and small in Sanskrit, Prakrit, Apabhraṁśa and old Rājasthāni-Gujarāti lying scattered over Rājasthāna, Gujarāta, Mālawā and other regions of our country. Many of these are still unknown and unpublished. Up till now scholars have generally devoted themselves to works which are comparatively bulky, well known and available in great number. The same outlook prevails also amongst publishers of oriental series.

But in addition to those big and well-known works, there are many small ones on a variety of subjects which have not attracted the attention that they deserve. In fact, no major attempt has been made to edit and publish these small works on important subjects. It would be no exaggeration to say that these works which contain important material for the history and culture of our country and which embody not a negligible part of our ancient learning have been mostly neglected, probably because they are in small manuscripts and rare to find.

It has been our endeavour from the very inception of Rājasthāna Oriental Research Institute to search for, collect and preserve mss. of such small works on various subjects and also to edit and publish them. Accordingly we have arranged for critical editions of such works at the hands of competent scholars and their publication in the Rājasthāna Purātana Granthamālā.

In persuance of this object, this small but important work Nṛtta-Saṁgraha is being published in the Rājasthāna-Purātana-Granthamālā as number 17. The ms. of this work which consists of thirteen folios is preserved in the mss. collection of Gujarāta Vidyā Sabhā, Ahmedabad. It would be interesting to know that this and many similar important works were rescued by the Gujarāta Vidyā Sabhā from the vendors of old things in the weekly market of Ahmedabad, called Gujarī.

The title of this work is missing. But as the learned editor has shown, this work treats of dancing and therefore it is appropriately named Nṛtta-Saṁgraha.

In this small work different varieties of old Indian dancing are described. It includes both the Northern and Southern types. In the Southern types are mentioned dances prevalent in Drāviḍa, Telanga and

Karṇāṭaka with the Abhinayas accompanying the songs in their languages. In the Northern, are included those dances which accompany songs in Sanskrit, Madhyadeśiya (modern Hindi) and Pārsīka or Persian. The Jakkaḍi dance – so popular amongst the Yavanas – is also described. At the end of the work is mentioned the well-known Daṇḍa-Rāsa (known in Gujarātī as Dānḍiyā Rāsa).

Thus this small work in a concise form gives information about the art of dancing which, it is hoped, will be interesting and useful to students of that art and Indian culture.

Dr. Priyabālā Shah deserves our thanks for discovering this unknown and neglected work from the mss. collection of Gujarāta Vidyā Sabhā and realizing its importance from its perusal for undertaking to edit it for this series.

Muni Jinavijaya
Hon. Director,
Rajasthan Oriental Research Institute,
JAIPUR.

Anekanta Vihar
Ahmedabad.
15-7-56

फं ततः सांप्रदायकाः वाद्यानां नादसाम्यं चक्रुश्चावदितमानसाः॥ मेलापकं वादयेयुः प्रबंधं गजरं ततः॥ द्रु
डुकस्यां ततश्चांतर्द्वनौ दूरी तेसति। नर्तको नर्तकी वापि दिक्पालानां च विधिं विचिंतुं। मातृकामुनिनागांश्च यक्ष
गंधर्वकिंनरान्। गणेशांस्तरतं तं द्रुं लक्ष्मीवाणीउमामुखाः। ज्येष्ठाश्चये पुष्पैर्विष्णुं नत्वा तद्रंगमाविशेत्। नृत्त
मंडपमध्यात् मंगलाकृतिमानतः सप्तसप्तकराक्रांतस्थानं तद्रंगमुच्यते। इति रंगप्रवेशः। तत्र कार्यो विधि
नृत्तं बंधनं नाम निबंधकं। गत्यादिनियमैर्युक्तं बंधकं नृत्तमुच्यते। अनिबंधस्त्वनियमाद् द्वयो द्वेधा क्रमोद्य
था। मुखचालिश्चारुयाणि धुवाडा विडुलागवः ततः परं शब्दचालिर्नानानाम्नः प्रबंधकाः। स्वरमंडादय
गीतप्रबंधस्थिं द्रुतातयः धरूणां तातयः पश्चा कतिधक्वयदानि च। इत्युदिष्टं बंधकस्यतल्लक्षणं ब्रुवे
च्यते। मुखं तु पूर्वरंगस्याचालिस्तदनुगाततिः। मुखचालिरिति प्रोक्ता नृत्तज्ञैः पूर्वसूरिभिः। चंडात्र ने
त्रवाराष्टवेदांगशरदिक्क्व। स्वसव्यं क्रमतो नृत्तमध्ये पुष्पांजलिं क्षिपेत्। अयतः क्षेपणं काजापीज्यते
दक्षिणे सव्य। दक्षिणे त्वयं वामे रंगपी ठांतरे क्षिपेत्। रंगपीठस्य मध्ये तु ब्रह्मा स्वयमधिष्ठितः। इत्य

हि। इति रासनृत्यं॥ नृत्यनिबंधनं री

[नृत्तसंग्रह द्वितीय तथा अन्त्य पत्रकी प्रतिकृति

Introduction

The text edited in the present work is based upon a single Ms. in the possession of Gujarat Vidysabha, Ahmedabad.

Ms. No. 868

Name—not given at the end. I have named it *Nṛtta-saṁgraha* as it describes various kinds of Nṛttas.

Author—?

Material—Paper

Script—Devanāgarī

Extent of the Ms.—2 to 13, i. e. 12 folios (incomplete)

Size of leaves—9·25×4·25 inches

Area of writing—7·5×3·75 inches

Number of lines—10 lines per page

Number of letters—36 to 40 in each line

Writing—fairly uniform and legible

Age—not mentioned. From its appearance, nearly two to three hundred years old.

Begins-Folio No. 1 is missing. The second folio begins-

* * * * छन्तः सांप्रदायकाः ।
वाद्यानां नादसाम्यं च कृत्वावहितमानसाः ॥

Ends

दण्डैर्विना कृतं नृत्यं रासनृत्यं तदेव हि ।
इति रासनृत्यम् । इत्यनिबन्धनृत्तम् ॥

On comparing this work with the Saṁgīta-ratnākara (Vol. 2, Page 800, ślo. 1271–72 Ānandāśrama edition), I found that the verses referred to above are a part of the section on संप्रदाय. The verses that precede are nearly 9 in number. If our Ms. began on the second side of the first folio, it would provide space for this number. I have quoted these verses in the foonote, page 1.

The name and the author of this work are not known. I was tempted to edit it, because it has some noteworthy information to give regarding dancing as it was practised in India in ancient and medieval times. A part of its subject matter agrees with the usual information given in Nṛtya works like संगीतरत्नाकर. However, while explaining technical terms like

चिन्दु कड्डिघरू, जक्कडी etc., it traces them to the regions of their origin. This in itself is very interesting. In addition to this, its refefrences to यवन and पारसीक types of dance give this work special importance.

As far as the language is concerned, the author does not, himself, seem to have written pure Sanskrit. So I have not tried to emend the text from the point of view of Pāṇinian grammar. In the case of non-Sanskrit words like चिन्दु, जक्कडी and such others, I have left them as they are without attempting any uniformity in them.

Before concluding, I must not omit to tender my most sincere thanks to revered Āchārya Śrī Muni Jinavijayaji, the Honorary Director of Rajasthan Puratattva Mandir, Jaipur, who is known for the encouragement he gives to young workers in the field of researh. I am greatly indebted to him for not only accepting this work for publication in Rajasthan Puratattva Series, but also for helping me in learning the craft of editing old manuscripts.

I am much indebted to my teacher Prof. R. C. Parikh, for giving much of his valuable time for discussing with me several problems connected with the preparation of the present text. As Director of the institution in which I am working, he was kind enough to get permission to undertake this work from the authorities concerned.

Ahmedabad

Priyabala Shah

1-9-1952.

[नृत्तसंग्रहः]

. . . . ।
. . . . *ष्ठन्तः [1]सांप्रदायिकाः ॥ १

---

* यत्रैको मुखरी [2]श्रेष्ठस्तथा प्रतिमुखर्यपि[3] ।
द्वावङावर्जिनौ स्कन्धावर्जिनौ करटाधरौ (?) ॥ १२६३

द्वात्रिंशन्मर्दलधरा वरास्तालधरद्वयम्[4] ।
कांस्यतालधरास्त्वष्टाविष्टाः काहलिकद्वयम् ॥ १२६४

वांशिकौ रसिकौ व्यक्तसुरक्तप्रचुरध्वनी ।
चत्वारो मधुरध्वाना [5]भवन्त्येते करास्तयोः ॥ १२६५

द्वौ मुख्यगायनौ सार्धमष्टभिः सह गायनैः ।
मुख्यगायनिके चाष्टौ सहगायनिकास्तयोः ॥ १२६६

संप्रदायसमुल्लासि पात्रमेकं [6]गुणान्वितम् ।
सर्वेऽमी रूपवन्तः स्युश्चित्रालंकरणान्विताः ॥ १२६७

गीतादिसाम्यनिपुणाः [7]प्रहर्षोत्फुल्लचेतसः ।
उत्तमः संप्रदायोऽसौ लोके कुटिलमुच्यते ।
तदर्धं मध्यमो न्यूनोऽस्मात्कनिष्ठो निगद्यते ॥ १२६८

इति संप्रदायलक्षणम् ॥

अनुवृत्तिर्मुखरिण[8]स्तलयोर्न्यूनपूरणम्
तालानुवृत्तिरित्येते चत्वारः कुटिले गुणाः ॥ १२६९

संप्रदायस्य दोषः स्यादेतद्गुणविपर्ययः ॥ १२७०

इति संप्रदायगुणदोषाः ॥

संगीतज्ञैर्बुधैः सार्धं नायके प्रेक्षके स्थिते ।
प्रविश्य रङ्गभूमिं ते तिष्ठन्तः सांप्रदायिकाः ॥ १२७१

'संगीतरत्नाकर' अ. ७ (आ. सं. सिरीझ)

1 Ms °दायकाः 2 ग. श्रेष्ठः सूच्या प्र° । 3 च. °पि । द्वौ चामजठरावद्धावर्जितौ करटाधरौ (?) । 4 ख. ग. °धराद्वयम्° । 5 च. °वन्त्यो नरकास्त° । 6 च. °णाश्रयम् । 7 ग. प्रकर्षो°. 8 °णरत्ताल°.

वाद्यानां नादसाम्यं च कृत्वाऽवहित[1]मानसाः।
मेलापकं वादयेयुः प्रबन्धं गजरं ततः॥ २
कुडुकस्यां ततश्चान्तर्ध्वनौ दूरीकृते सति।
नर्तको नर्तकी वापि दिक्पालांश्च विधिं विभुम्॥ ३
मातृकामुनिनागांश्च यक्षगन्धर्वकिन्नरान्[2]।
गणेशं भरतं तण्डुं लक्ष्मीं वाणीमुमामुषाम्।
ज्येष्ठाश्च ये गुणैर्विष्णुं नत्वा तद्रङ्गमाविशेत्॥ ४
नृत्तमण्डपमध्यात् तु मङ्गलाकृति मानतः।
सप्तसप्तकराक्रान्तस्थानं तद् रङ्गमुच्यते॥ ५

इति रङ्गप्रवेशः॥

तत्र कार्यं द्विधा नृत्तं बन्धकं चानिबन्धकम्।
गत्यादिनियमैर्युक्तं बन्धकं नृत्तमुच्यते॥ १
[3]अनिबन्धं त्वनियमादथोद्देशक्रमो यथा।
मुखचालिश्चोरुपाणि धुवाडा विडुलागवः॥ २
ततः परं शब्दचालिर्नानाशब्दप्रबन्धकाः।
स्वरमन्द्रादयो गीतप्रबन्धाश्चिन्दुजातयः॥ ३
धरूणां जातयः पश्चात् कति ध्रुवपदानि च।
इत्युद्दिष्टं बन्धकस्य लक्षणं [4]त्वधुनोच्यते॥ ४
मुखं तु पूर्वरङ्गः स्याच्चालिस्तदनुगा गतिः।
मुखचालिरिति प्रोक्ता नृत्तज्ञैः पूर्वसूरिभिः॥ ५
चन्द्रत्रिनेत्रवाराष्टवेदाङ्गशरदिक्षु च।
स्वसव्यक्रमतो नृत्वा मध्ये पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्॥ ६
अग्रतः क्षेपणाद् राजा पीडयते दक्षिणे सभा।
पृष्ठे गुरुः स्वयं वामे रङ्गपीठान्तरे क्षिपेत्॥ ७
रङ्गपीठस्य मध्ये तु ब्रह्मा स्वयमधिष्ठितः।
इष्टार्थं क्रियते पुष्पमोक्षणं रङ्गमध्यतः॥ ८
यतः पादस्ततो हस्तो यतो हस्तस्ततस्त्रिकम्।
पादस्य निर्गमं ज्ञात्वा शेषाङ्गानि नियोजयेत्॥ ९
इतस्ततोऽर्थपर्याय इङ्गने अङ्गने इति।
रञ्जकाय वदेत् तत्र यथातालल‍योचितम्[5]॥ १०

1 Ms °वस्थित° 2 Ms °रात्. 3 Ms °न्ध. 4 Ms °न्व°. 5 Ms °योजि°.

आविद्धवक्त्रहस्ताभ्यां चार्या च समपादया ।
पुरतस्त्रिपदीं गच्छेन्नटवर्यो विलासतः ॥ ११

ततश्चन्द्रे लीनकं च कृत्वा समनखं ततः ।
सविलासं मन्दमन्दं तिर्यक् चालनसुन्दरम् ॥ १२

पार्श्वद्वन्द्वं सुल्लूनामा चालयेत् तु मुहुर्मुहुः ।
मन्दानिलचलद्दीपशिखेवाङ्गस्य चालनम् ॥ १३

अथवाऽहिफणाकारां सुल्लमाहुर्मनीषिणः ।
व्यावर्त्तितौ लताहस्तौ युगपत् क्रमतो यदि ॥ १४

भवेद् द्विशिखरत्वं च पादौ संयुक्तकुञ्चितौ ।
गात्रं तदनुसारेण नीचं नीचं व्रजेत् तदा ॥ १५

तलसञ्चमनुप्राप्य सूल्लूनर्तनमाचरेत् ।
भूमेरूर्ध्वे स्थितिः [1]कट्यास्तालद्वित्रिचतुष्टयात् ।
तलमध्योर्ध्वसञ्चाख्याः क्रमेण कथिता बुधैः ॥ १६

अङ्गुष्ठमध्यमाङ्गुल्यौ ये हस्तस्य प्रसारिते ।
तदग्रयोरन्तरालं तालमाहुर्मनीषिणः ॥ १७

रागालापानुगां व्यक्तशब्दालापानुसारिणीम् ।
गतिं च सर्वदा कुर्यात् सभाजनमनोहराम् ।
चार्या साग्र्या सव्यसूची पादोऽग्रतलसञ्चरः ॥ १८

अधस्तलपताकश्च बाहुस्तत्र प्रसारितः ।
शिरोवक्त्रपादानां युगपद् रेचनं [2]वदेत् ॥ १९

ततस्तु मध्यसञ्चेन सोत्संघा करिहस्ततः ।
दक्षिणश्चरणस्तस्मान्निष्क्रम्य स्वस्तिकं भजेत् ॥ २०

सूल्लूचालनकं तत्र तथा नूपुरविद्धिकाम् ।
ततस्तु तलसञ्चेन चतुरस्रं समाश्रयेत् ॥ २१

चतुरस्रौ करौ तत्र सूल्लूं तत्रापि चालयेत् ।
ततस्तलमुखाभ्यां च चार्या स्वस्तिकया तथा ॥ २२

---

1 Ms कचा°. 2 Ms वयेत्.

तृतीयां दिशमासाद्य [1]तूर्ध्वं सव्येन सव्यतः ।
[2]समां कृत्वा समनखं पूर्ववच्चाङ्गचालनम् ।
वैशाखरेचितं तत्र बाहू तिर्यक्प्रसारितौ ॥ २३
ततः कुलीरिका चार्या द्वितीयं स्थानमाचरेत् ।
मण्डलं स्थानकं तत्र सूल्लूवर्तनकं तथा ॥ २४
करिहस्तकया चार्या सव्यहस्तिकरेण च ।
उद्वेष्टितेन वामेन रङ्गमध्यं समाश्रयेत् ॥ २५
सभासंमुखतो हस्तौ तौ च तत्क्रियया पुटौ ।
पार्श्वरेचितकं तत्र जानुकुञ्चितकं तथा ॥ २६
मण्डलस्थानकं कृत्वा लताहस्तौ सुलूं तथा ।
वामो यथास्थितः कार्यो दक्षिणस्तु लताकरः
ऊर्ध्वोर्ध्वाङ्गं यथा तत्र तदूर्ध्वं[3] सारयेत् करः ॥ २७
ततस्तलमुखाभ्यां च चार्या स्वस्तिकया तथा ।
सप्तमीं दिशमासाद्य सभां कुर्यात् तु वामतः ॥ २८
द्वितीयायां तृतीयायां रङ्गमध्ये च यत्क्रमम् ।
तत्क्रमं नृत्ततत्त्वज्ञश्चार्याद्यङ्गविशेषतः ॥ २९
यथाक्रमेण सप्तम्यामष्टम्यां रङ्गमध्यतः ।
नृत्त्वा चाविद्धवक्त्राभ्यां चार्या चैव सरालया । ३०
चतुर्थीं दिशमासाद्य तत्र स्थानं च मण्डलम् ।
जनितं करणं तत्र सुलूं चापि प्रचालयेत् ॥ ३१
दक्षिणः खटकः कर्णे वामो मुष्टिः स्वपार्श्वतः ।
धनुःकर्षं स्थितावर्त्तचार्यी तिर्यङ्मुखाख्यया ॥ ३२
षष्ठीं दिशं समागत्य प्रत्यालीढाङ्गचालनम् ।
तत्रैव चतुरस्रं च विप्रकीर्णां[4] सुलूं तथा ॥ ३३
ततोऽर्धरेचिताभ्यां च चार्या तिर्यङ्मुखाख्यया ।
पञ्चमीं दिशमासाद्य सुलूं समनखं नयेत् ॥ ३४
शुद्धचालिं च तत्रैव [5]कौक्कुटीमिति पाटतः ।
ततोऽञ्जलिकरं कृत्वा शिरोवदनहृत्क्रमात् ॥ ३५

1 Ms नूदूर्ध्वं. 2 Ms सभां. 3 Ms नूदूर्ध्वों. 4 Ms °कीर्णो. 5 Ms कुक्कुट°.

देवं गुरुम् ऋषिं[1] नत्वा चार्या कातरया तथा ।
रङ्गमध्यमनुप्राप्य चार्याऽर्ध्यद्धिकया समे ॥ ३६
तलपुष्पपुटं कृत्वा पुष्पाण्यापूर्य तत्र च ।
सव्यापसव्यतः पश्चादग्रादूर्ध्वात् क्रमादिति । ३७
पुष्पाञ्जलिं दर्शयित्वा रङ्गपीठान्तरे क्षिपेत् ।
तत्रैवाभिनयेन्नान्दीश्लोकं तद्रागयोजितम् ॥ ३८
यथा—भवतां भूतये भूयाद् भवानी भववल्लभा ।
अङ्गीकृतसुसङ्गीतभृङ्गी[2] मुदितमानसा ॥ ३९

भवतां-पुरोदेशगतेन पताकेन, भूतये-पुरोदेशोद्ध्वोंत्थिताभ्यामलपल्लवाभ्यां,

भूयात्—उद्वेष्टिताधोमुखगतेन पताकेन, भवानी-वामवक्षोरुहतटगतस्वसंमुखगोमुखेन, भव-ललाटगतसूच्यास्येन । वल्लभा-हृदयगतचतुरेण । अङ्गीकृत-मुखस्थकपोतेन । सुसङ्गीत-मुखदेशगतहंसास्येन । भृङ्गी-कम्पितपुरोदेशगतेन त्रिपताकेन । मुदित-पुरोधस्तदूर्ध्वोत्थितेन[3] वामेनालपल्लवेन । मानसा-हृदयगतेन व्यावर्त्तितपरिवर्त्तित-दक्षिणसंदंशेन ॥

ततस्तत्रैव शीघ्रेण पार्श्वयोरग्रतः क्रमात् ।
कमलवर्त्तनिकामादौ मकरवर्त्तनिकां ततः ॥ ४०
मायूरीं भानवीं मैनीं हयलीलां मृगीं तथा ।
हंसीं च कुक्कुटीं पश्चात् खञ्जनीं गजगामिनीम् ।
दर्शयेयुः क्रमात् [4]तज्ज्ञाः संप्रदायानुसारतः ॥ ४१
पताकौ मणिबन्धस्थौ शिथिलौ स्वस्तिकौ पुनः ।
मण्डलभ्रमितौ श्लिष्टौ ख्यातौ कमलवर्तनौ ॥ ४२
यदा तु मकरो हस्तपुरस्तात् पार्श्वयोरपि ।
व्यावर्तनाद् बहिश्चान्तस्तदा मकरवर्तना ॥ ४३
बर्हिबर्हकलाकारौ करौ कृत्वोर्ध्वतः क्रमात् ।
शनैरुच्चालितौ पादौ मायूरीस्फुरणं ततः ॥ ४४
भानोर्गतिरिवालक्ष्ये हस्ताभ्यां मण्डलाकृतिः ।
सव्यापसव्ययोरूर्ध्वक्रियया भानवीगतिः ॥ ४५

1 Ms ऋषि. 2 Ms भंगी. 3 Ms °स्थितेन. 4 Ms °त्तज्ञाः

हृदान्तःस्थितपाठीनो यथा वसति वीचिषु ।
पार्श्वयोरुभयोस्तद्वत्क्रियया मैनवीगतिः ॥ ४६

पादपार्श्वयुगे स्थित्वा धरण्यां सञ्चरेद् द्रुतम् ।
मध्ये च स्थीयते तत्र गतिरुक्तानुरङ्गिणी ॥ ४७

चकिताक्षी कुरङ्गी च पश्यन्ती गीतपद्धतिम् ।
आकर्णयन्ती यदि सा हारिणीगतिरीरिता ॥ ४८

मरालीं च पुरस्कृत्वा भावहावादिपूर्वकम् ।
मन्मथोद्दीपना दृष्टिः कथिता हंसिनीगतिः ॥ ४९

युगपत् स्फुरणात् पक्षपादयोः साचिमण्डले ।
मत्तकुक्कुटवद् यत्र कौक्कुटीगतिरीरिता ॥ ५०

त्रिपताकौ करौ कृत्वा [1]जानू सङ्कुच्य शीघ्रतः ।
पादाग्रतश्चरित्वा[2] तु स्थीयते खञ्जनीगतिः ॥ ५१

समपादेन च स्थित्वा मन्दं मन्दं चरेत् ततः ।
गम्भीरश्चाङ्गदृष्टिश्चेद् गजलीलागतिर्मता ॥ ५२

गतीनां सानुकूलत्वं भजेयुश्चरणादयः ।
ततोऽग्रे सव्यहस्ताङ्घ्री युगपत् क्रियया क्रमात् ॥ ५३
वैष्णवं च हयक्रान्तं प्रत्यालीढं[3] च मोक्षणम् ।
कुर्यात् तदा वामहस्तशिखरो हृदि संस्थितः ॥ ५४

पताकोऽधस्तलश्चान्यः स्वपार्श्वे च प्रसारितः ।
चित्रकलासकं तत्र मोक्षे सम्यक् प्रयोजनम् ॥ ५५

इति मुखचालिः ॥

यतितालल्यस्थानचारीहस्तात्मकं तु यत् ।
तन्नृत्तमुरुपं प्रोक्तं बुधैर्द्वादशधोदितम् ॥ १
नेरिः करणनेरिश्च मित्रं चित्रं च नत्रकम् ।
अदृष्टपृष्ठतुल्लं च तोलरूपं च सीलुकम् ॥ २
तुल्लं च प्रसरं चैव कर्तरी होलुनामकम् ।
द्वादशेति समाख्याता, अथ लक्षणमुच्यते ॥ ३

1 Ms जानु. 2 Ms त्तु° 3 Ms °लीढे.

चतुरस्रे स्थितिर्यत्र रासतालश्शिरो लयः ।
रथचक्रैकपादेन परेण च यथोचितम् ॥ ४
गतिः पताकहस्तश्च प्रत्याशं तलसश्चतः ।
नीवीबद्धतिसश्चारः क्रमात् सव्यापसव्ययोः ॥ ५
रेखासौष्ठवसंपन्नः स शुद्धो नेरिरुच्यते ।
उरुपेष्वपि सर्वेषु विना दृष्टकपृष्ठकम् ॥ ६
ब्राह्यभ्रमरिकां बद्ध्वा मुक्तिः स्याच्चतुरस्रके ।
छत्रभ्रमरिका किन्तु भवेत् करणनेरितः ॥ ७

इति नेरिः ॥

झंपातालः सगोपुच्छो[1] हस्तकोत्पलपल्लवः ।
पार्श्वोर्ध्वजानुनी दण्डपक्षं तलविलासितम् ॥ १
विद्युद्भ्रान्तं ततश्चन्द्रवर्त्तनामनि शुंभितम् ।
ललाटतिलकं पश्चात् लतावृश्चिकसंज्ञकम् ॥ २
नवभिः करणैरेभिः क्रमात् सव्यापसव्यतः ।
कृत्वालीढे स्थितिर्यत्र नेरिः करणपूर्वकः ॥ ३

इति करणनेरिः ॥

यत्रानेकस्थितिः क्रीडा गोपुच्छाद्यं ततः समा ।
सचालमकरा लास्यश्चारी नूपुरपादिका ।
त्रिसञ्च [2]सौष्ठवं रेखा प्रत्याशं भित्रमुच्युते ॥ १

इति भित्रम् ॥

तिर्यङ्मुखा प्रधानेन मध्ये काचिद् यथोचिता ।
गतिः सचालककरस्त्रिपताकः ससौष्ठवम्[3] ॥ १
त्रिसञ्चेन पिपील्या च मल्लिकामोदतालतः ।
शोभितं यत्र दिग्भावैश्चित्रं तत्स्थितिरीप्सिता ॥ २

इति चित्रम् ॥

मरालगतिका यत्र मध्ये गत्यान्ययान्विता ।
समतालप्रयोगेण यतिभेदेन राजितम् ॥ १

---

1 Ms पुछो. 2 Ms सौष्ठुवं. 3 Ms °ष्ठु.

विचित्रभ्रमरो बालक्रीडासाधनचक्रवत् ।
स्थितिर्यथेप्सिता तद्विभ्रजकं नत्रमुच्यते ॥ २

इति नत्रम् ॥

करिहस्तागतिर्यत्र काचिन्मध्ये यथेप्सिता ।
रचातालः सुयतिवान् [1]मध्यमानेनात्रस्थितिः ॥ १
विचित्रचतुरो हस्तो दिक्षु सज्जनमोहनम् ।
अदृष्टपृष्ठपूर्वं तत् तुल्लं सद्भिर्निगद्यते ॥ २

इत्यदृष्टपृष्ठतुल्लम् ॥

काश्चित् तालानुपक्रम्य प्रयोगे बहुलद्रुतान् ।
संकीर्णानेकगतिभिः प्रवृत्तं सुमनोहरम् ।
[2]ध्रुवाडाख्यं च [3]तज्ज्ञेयं तालरूपं विचक्षणैः ॥ १

तद् यथा ।

हस्तबाह्वङ्घ्रिभिः सव्यैर्वामयद्बाहुहस्तकैः ।
षड्भिरङ्गैश्चतुर्भिर्वा तालैस्तत्तन्मितोऽङ्गकैः ॥ १
समानमात्रलान्तैश्च द्रुतलघ्वादिकैर्यदि ।
पूर्वं पूर्वं परित्यज्य त्वग्रिमाग्रिममाश्रितैः ॥ २
एकदा वान्यतालेन नृत्तं कुर्यान्नटाग्रणीः ।
चक्रबन्धं तदाख्यातं नृत्तविद्याविशारदैः ॥ ३

इति चक्रबन्धः ॥

तालानां तुल्यमात्राणां षण्णां[4] दलघुरूपिणाम् ।
समद्विभागलान्तानां प्रत्येकं द्विदलं समम् ॥ १
कृत्वा तत्पूर्वपूर्वार्द्धं षट्सु स्थानेषु योजयेत् ।
चरमं चरमं वार्द्धं तत् तत् पूर्वं ततः क्रमात् ॥ २
प्रयोजिते तदा ताला-द्वादश प्रभवन्ति हि ।
चक्रबन्धवदन्यत् तु रविचक्रं भवेदिति ॥ ३

इति रविचक्रम् ॥

चतुर्णामेव तालानां रविचक्रोक्तलक्षणम् ।
चतुःषु हस्तपादेषु पूर्वपूर्वदलं न्यसेत् ॥ १

1 Ms °नेनत्र°. 2 Ms कुवाडा°. 3 Ms तज्ञेय°. 4 Ms षणा.

तत् तत् परदलं हस्तपादयोर्मेलयेन्मिथः ।
सव्यापसव्ययोस्तत्र वसुताला भवन्ति हि ।
पद्मबन्धमिति ख्यातं शेषं स्याद् रविचक्रवत् । २

इति पद्मबन्धम् ॥

चतुर्णां तुल्यमात्राणां तालानां दलरूपिणाम् ।
समत्रिभागलान्तानां प्रत्येकं तु पृथक् पृथक् ॥ १
त्रिविभागान् क्रमात् कृत्वा कराङ्घ्रिष्वथ योजयेत् ।
स्वस्थाने च तृतीये च द्वितीये तालखण्डकान् ॥ २
प्रतितालं क्रमान्न्यस्य नटो नृत्तं समाचरेत् ।
नागबन्धं तदा [1]प्रोक्तमन्यत् स्यात् पद्मबन्धवत् ॥ ३

इति नागबन्धम् ।

चतुर्णामेव तालानां पद्मबन्धोक्तलक्षणम्[2] ।
स्थापयेत् पूर्वपूर्वार्धं परार्धं चारयेन्मिथः ॥ १
हस्तयोः पादयोस्तद्वद्धस्ताङ्घ्र्योरुभयोस्तथा ।
सव्यापसव्ययोर्हस्तपादयोः स्वाग्रतः क्रमात् ।
अन्यतालकृतं नृत्तं वृक्षबन्धं तदोदितम् ॥ २

इति वृक्षबन्धतालरूपकम् ॥

हंसपक्षकरो यत्र हंसलीलः कुलीरिका ।
अन्या तदङ्गिनी काचित् प्रतिदिक्षु प्रसारणम् ॥ १
वानरक्रीडिताकारं तलसञ्चेन सीलुकम् ।
तदेव जारमानाख्यं निगदन्त्यपरे जनाः ॥ २

इति सीलुकम् ॥

अश्लिष्टाख्या गतिर्यत्र काचिदन्तर्मनोहरा ।
सक्षिप्रगजलीलाश्च वर्त्तना पद्मकोशयोः ।
प्रतिदिक्स्थानकं तुर्लं तत् क्रमं जलकीटवत् । १

इति तुर्लम् ॥

विलम्बितैकताली च हस्तावाविद्धवक्रकौ ।
पार्ष्णिरेचितिका चारी काचिन्मध्ये यथेप्सिता ।
यत्र तत् प्रसरं प्रोक्तं स्थित्यादिकमनोहरम् ॥ १

इति प्रसरम् ॥

---

1 Ms प्रोक्तं. 2 Ms लक्ष्मणाम्.

ऊरुवेणीगतिर्यत्र मध्येऽप्यन्या तदीप्सिता।
उरोवर्त्तितकौ हस्तौ सुलयो लघुशेखरः।
स्थितिदिग्भेदतो विद्युद्गतिवत् कर्तरी मता॥ १

इति कर्तरी॥

पश्चात्क्षिप्तावुरःक्षेत्राद् यत्र स्यातां लताकरौ।
स्तम्भक्रीडनिका चारी मध्ये काचिद् यथोचिता॥
यतिलग्नः समुत्पाद्यः प्रत्याशं गतिचित्रितम्।
पलाशिगृध्रक्रीडा[1]यास्तद्धोल्लुमिति कीर्तितम्॥ २

इति होल्लु। इति द्वादश उरुपाणि॥

आद्यन्ते भ्रमरी यत्र सुलूनां त्रितयं हृदि।
भुजंगत्रासितामोक्षे तद्ध्रुवाडः समीरितम्। १
अन्ते सर्वध्रुवाडानामन्तर्भ्रमरिका मता।
कलविंकविनोदाख्यं [2]तार्क्ष्यं यक्षविलासितम्॥ २
विद्युद्विलासितं वात्यावर्त्तितं रविसञ्चरम्।
नर्त्तनाभरणं तिर्यक्[3]ताण्डवं रङ्गभूषणम्॥ ३
वादीशगजभैरूडं रोलंबांगविलासितम्।
पक्षिशार्दूलकं सिंहप्लुतकं द्वादशेति च।
इत्यूर्ध्वाधःकृतं पूर्वं वक्ष्ये तल्लक्षणं क्रमात्॥ ४

[लक्षणानि]

चक्रभ्रमरिनिःशङ्कौ डांड्डहोरमयी क्रमात्।
यदोत्प्लुत्योक्तमोक्षश्चेत् कलविंकविनोदकम्॥ १
चक्रभ्रमरिका यत्र होर्मथीडांड्डकौ मतौ।
निःशङ्क उक्तन्यासः [4]स्यात् तार्क्ष्यपक्षविलासिते॥ २
चक्रभ्रमरिकाडांड्डू निःशङ्को होर्मयी ततः।
यदा प्रागुक्तमोक्षः स्यात् तदा विद्युद्विला
चक्रभ्रमरिहोर्मय्यौ ततो निःशङ्कडांड्डकौ।
उक्तमुक्तिः क्रमाद् यत्र वात्यावर्तितकं च तत्॥ ४

---

1 Ms °ड्डा त्तद्धो°. 2 Ms तार्क्ष्य. 3 Ms °का. 4 Ms स्यः त्ता°.

वाद्यभ्रमरिका पश्चाद् डांड्को होर्मयी ततः ।
निःशङ्कश्चोक्तमोक्षोऽपि यत्र स्याद् रथिसञ्चरः ॥ ५
वाद्यभ्रमरिनिःशङ्कौ होर्मयीडाण्डुकौ ततः ।
पूर्वोक्तमोक्षणं यत्र नर्त्तनाभरणं च तत् ॥ ६
वाद्यभ्रमरिका यत्र त्वडालुर्होर्मयी ततः ।
रायरङ्गालुरुक्तांत्यस्तत् तिर्यक् ताण्डवे भवेत् ॥ ७
वाद्यभ्रमरिकांरायरंगालुर्होर्मयी ततः ।
अडालुरुक्तमोक्षश्च यत्र तद्रङ्गभूषणम् ॥ ८
तिरपादिभ्रमर्यत्र डांडुश्चाडंतरस्ततः ।
वादीशगजभैरूडे होर्मयी चोक्तमोक्षकः ॥ ९
तिरपाद्या भ्रमर्यत्र क्रमाद्धोर्मयिडांडुकौ[1] ।
रायरंगालुरुक्तान्त्यो रोलंबांगविलासिते ॥ १०
तिरपभ्रमरी चादौ त्वडालुर्डाण्डुकौ ततः ।
निःशङ्क उक्तमोक्षोऽपि पक्षिशार्दूलकं हि तत् ॥ ११
तिरपभ्रमरी यत्र रायरंगालुडाण्डुकौ ।
होर्मयी चोक्तमुक्तिः स्यात् तदा सिंहप्लुतं हि तत् ॥ १२

इति द्वादश धुवाडानि ॥

इत्युक्ता लागवोऽन्येऽपि सुलूपूर्वं पृथक् पृथक् ।
एकावृत्त्या द्विरावृत्त्या क्वचिदन्येन वा सह ।
उत्प्लवन्ति नटा यत्र ते सर्वे विड्डलागवः ॥ १
अडालू रायरंगालुर्निःशंको होर्मयी तथा ।
डांडु श्चाडंतरोदिङ्ग रायादिः पक्षिसालुवः ॥ २
अलगंढे किकावीसुस्तथामुंगरणं ततः ।
कर्त्तर्यलागपूर्वौ द्वौ दिंडिकौ वाथ लक्षणम् ॥ ३
सुलूं बद्ध्वा यदोत्प्लुत्य चरणौ पक्षिपक्षवत् ।
भ्रामयित्वा पतेद् भूमौ तदा डालुरितीरितः ॥ ४
सुलूं बद्ध्वैकपादेन सहैवानुपतेद् दिवि ।
द्वितीयोऽपि तदा रायरंगालुं तद्विदो विदुः ॥ ५

---

1 Ms °डाडुकौ.

सुल्कपूर्वं यदोत्प्लुत्य मिलितौ चरणौ समौ ।
दूरं भूमौ निपततः स निःशंकः प्रकीर्त्तितः ॥ ६
यत्र स्वस्तिकमावर्त्य पादः पृष्ठगतो यदा ।
लङ्घयेदङ्घ्रिणान्येन प्रोक्ता सा होर्मयी तदा ॥ ७

पुरः प्रसार्य चरणं लङ्घयेदपराङ्घ्रिणा ।
सुल्कपूर्वं तदा सद्भि[1]र्डाँड्डुरित्यभिधीयते ॥ ८

पुरतोऽपिहितौ[2] पादौ डांड्डुरेवाप्यनन्तरः ।
उत्प्लुत्य चरणद्वन्द्वं वस्त्रनिःपीडनोपमम् ॥ ९

परिभ्राम्यावनीं याति तदिदं दिंड्डुमुच्यते ॥
व्योम्नि निःशंकदिंड्डुभ्यां रायादिः पक्षिसालुवः ॥ १०

अधोमुखः [3]समुत्प्लुत्य निपत्य पुरतो यदि ।
कुक्कुटासनमाबध्य स्थिरश्चेदलगं तदा ॥ ११

समौ पादौ यदान्यस्मि[4]न्पार्श्वे त्वपरपार्श्वतः ।
उत्प्लुत्य पातयेच्चित्रं तदा ढंकीति कथ्यते ॥ १२

भूमावेकं समास्थाय द्वितीयं पूर्ववद् यदा ।
पातयेच्चरणौ व्योम्नि तं बीसं मुनिरब्रवीत् ॥ १३

संहतात्पुरमुत्प्लुत्य तनुवृत्त्या पराङ्मुखः ।
महीतले यदासीनो मुंगरणं कुक्कुटासने ॥ १४
तमेव विपरीतेन हिंगरणं केचिदूचिरे ।
होर्मयीकर्त्तरीपूर्वं कार्तरी डिंड्डुमूचिरे ॥ १५
गगने लगदिंड्डुभ्यामुच्यते लगदिंड्डुकः ॥ १६
इत्यादि बहवो भेदा सन्ति ते बिड्डुलागवः ।
लोकवृत्त्यानुसारेण ज्ञातव्यास्ते यथोचिताः ॥ १७

इति बिड्डुलागवः ।

बाह्यान्तस्तिरपच्छत्रचक्राद्या भ्रमरिका यथा ।
दक्षिणेणाङ्घ्रिणा स्थित्वा वाममङ्घ्रिं च कुञ्चयेत् ।
वामावर्त्तं भ्रमेद् यत्र सा बाह्या भ्रमरी मता ॥ १

1 Ms दाड्डु°. 2 Ms °पिलितौ. 3 Ms °प्लुत्य. 4 Ms °पार्श्वे.

एतस्यास्तु विपर्यासादन्तर्भ्रमरिका भवेत् ।
तिरपभ्रमरी तिर्यङ्क् द्वावङ्घ्री स्वस्तिकात् परम् ॥ २

त्रिविक्रमाकारधारि स्थानमास्थाय यत्र तु ।
वामावर्त्तं भ्रमेदाहुस्तां छत्रभ्रमरीं बुधाः ॥ ३

चक्रभ्रमरिकाखण्डसूच्यर्द्धे चक्रवक्रमात् ।
अन्याश्च काश्चिद् विज्ञेया भ्रमर्यो लोकवृत्तितः ॥ ४

इति भ्रमर्यः ।

तालधारिण्यभिव्यक्तं तादिकं वर्णसञ्चयम् ।
समुच्चरति षड्गादिमगणादिगणान्वितम् ॥ १

चतुरस्रं समाधाय विधाय शिखरं करम् ।
नाभावेकमुरोदेशादपरं पुरतः परम् ॥ २

पताकहस्तकाद्यन्यतमं कुर्यात् प्रयत्नतः ।
आद्यशब्दाक्षरोत्पत्तिहेतुकं सुभगं ततः ॥ ३

एकपादं पुरासूचीपरं चरणमञ्चितम् ।
पश्चाद्धृत्याथ तं हस्तं तत्तत्करसमं यदा ॥ ४

व्यावर्त्तयेत् तमेवाङ्घ्रिं नयेत् पश्चात् तथापरम् ।
गात्रमात्रस्वरानङ्गैर्भावलोचनचेष्टितैः ॥ ५

पादाभ्यां दर्शयेत् तालं लयाच्छब्दाक्षराण्यलम् ।
नृत्येत् तदा शब्दनृत्तं नृत्तवद्भिरुदीरितम् ॥ ६

इति शब्दनृत्तम् ॥

यस्य गीतस्य यो रागस्तस्य यः स्याद् ग्रहस्वरः ।
षड्गादन्यतमः सोऽत्राभिनेयो हस्तकेन तु ॥ १

दक्षिणेनालपद्मेन वामेन चतुरेण च ।
परिमण्डलितेनाथ मयूरललितेन च ।
एवं विनिर्दिशेत् षड्गं लक्ष्यलक्षणकोविदैः ॥ २

हंसास्याभिधहस्तेन दक्षिणेनेतरेण तु ।
कटिस्थेनार्द्धचन्द्रेण समेन शिरसा तथा ।
ब्रह्माख्यस्थानकेनापि धीमान् रिषभमादिशेत् ॥ ३

शुकतुण्डेन हस्तेन दृष्ट्या करुणया तथा ।
अधोमुखेन शिरसा [1]स्वश्वक्रान्ताभिधेन च ।
चार्याप्युचितया धीमान् गान्धारं स्वरमादिशेत् ।। ४
[2]पताकौ स्वस्तिकौ कृत्वा शिरसा विधुतेन च ।
शैवाख्यस्थानकेनापि कटीच्छिन्नेन चापुनः ।
दृष्ट्या च हास्यया धीरोऽभिनेयो मध्यमस्वरः ।। ५

कृत्वालपल्लवौ हस्तौ धुतेन शिरसा तथा ।
एवं विनिर्दिशेद्धीमान् स्वरं पञ्चमसंज्ञकम् ।। ६
काङ्गूलहस्तकौ कृत्वा दृष्ट्या बीभत्सया तथा ।
परावृत्तेन मूर्ध्ना च प्रत्यालीढाभिधेन च ।
स्थानकेन विनिर्दिष्टो धैवतो निपुणैर्नटैः ।। ७
[. . . . .] हस्तेन करिहस्तेन लीलया
दृष्ट्या विधूतशिरसा निषादं संनिरूपयेत् ।। ८

इति स्वराभिनयः ।।

इहोदितस्य दिक्स्थानकरणैश्च निरूपितैः ।
समस्तैरथवा व्यस्तैस्तत्तत्कारानुरोधतः ।। १
यत्र तालयुजा यत्या तन्नृत्यं सुमनोहरम् ।
ततः शब्देन तदनुदूग्रहेण च ततः पुनः ।। २
शब्देन तेनकैशब्दखण्डेन ध्रुवकेन च ।
पुनः शब्देन तदनु यतिगीतेन नर्त्तनम् ।। ३
हावभावादिसुलयतालादिगतिसङ्गतम् ।
यदोल्लासलसद्गात्रं पात्रमारचयेत् तदा ।
स्वरमञ्चकनृत्यं स्याल्लक्ष्यवेदिमनोहरम् ।। ४

इति स्वरमञ्चनृत्यम् ।।

गीततानग्रहसमं समुच्चरति तादिकम् ।
पूर्ववद्वर्णसंघातं तालधारिणि हारिणि ।। १
येन येनेह गीतेन नृत्येत् पात्रं ससौष्ठवम्[3] ।
तत्तन्नृत्यं बुधैर्देश्यं तत्तन्नामपुरःसरम् ।। २

---

1 Ms °न्च. 2 Ms पाताकौ. 3 Ms °ष्ठु°.

स्थाप्यादिवर्णानिङ्गेन भावान् नेत्रादिरागतः ।
हस्तैरभिनयेदर्थान्[1] [2]तत्तद्वाक्यसमुद्भवान् ॥ ३

तालग्रहानङ्घ्रिपदैः समादिश्य यथोचितम् ।
अनेनैव प्रकारेण गीतनृत्तं समाचरेत् ॥ ४

एलादयः शुद्धसूडावर्णाद्यालिक्रमास्तथा ।
श्रीरङ्गाद्या विप्रकीर्णास्तथा सालगसूडकाः ॥ ५

तथान्येऽपि प्रसिद्धाश्च[3] त्वप्रसिद्धा यथोचिताः ।
सार्थाङ्गं नृत्यवन्नृत्येन्निरर्थाङ्गं तु नृत्तवत् ॥ ६

इति गीतनृत्यम् ॥

देशी द्राविडदेशस्य चिंदुरित्यभिधीयते ।
तत्षोढा दृश्यते शुद्धचिन्दुश्च बिन्दुचिन्दुकः ॥ १
तिरुवणी चिन्दुको माला चिन्दुकः कोलचारिकः ।
गीतमुद्रादिकश्चिन्दुरिति तल्लक्षणं यथा ॥ २
यत्रोद्ग्राहध्रुवपदो बद्धो द्राविडभाषया ।
तच्छुद्धचिन्दुकः प्रोक्तो मेलापाभोगवर्ज्जितः ॥ ३

इति शुद्धचिन्दुः ॥

यत्रोद्ग्राहं च मेलापं सकृद् गीत्वा ततो ध्रुवम् ।
प्रभुनामाङ्कितं द्वित्रिविरामाढ्यं मुहुर्मुहुः ।
गीत्वा ध्रुवेषु मोक्षः स्याच्चेत् तदा बिन्दुचिन्दुकः । १

इति बिन्दुचिन्दुः ॥

नेतृनामाङ्कितोद्ग्राहस्तन्मानात् सार्धकध्रुवः ।
एतद् द्वयं मुहुर्गायेत् तदा तिरुवर्णि चिंदुः ॥ १

इति तिरुवणिचिन्दुः ॥

अनियतपादभागे माला मालादिचिन्दुकः ॥ १

इति मालाचिन्दुः ॥

यत्र पाटाक्षरालापस्ततो वाक्यमतात्मकम् ।
पदरागसमुद्दीप्तं तत्कथाबीजसूचकम् ॥ १

---

1 Ms °नयेन°. 2 Ms यद्वा°. 3 Ms श्चा.

ततश्च चिन्दवः पञ्च सप्त वा मध्यमध्यतः ।
पिल्मिरूकैमिरूरम्यकलासैरिति चित्रितम् ॥ २
शास्त्रसङ्गकथावृत्तिश्चेत् तदा कोलचारिका ।
अन्यत्कथाप्रवृत्तिश्चेत् तदा कट्टेण चिन्दुकः ॥ ३

इति कोलचारीचिन्दुः ॥

गीतवद्गीतमुद्रादिचिन्दुकोऽष्टविधः स्मृतः ।
मेलापकान्तराभोगसमस्तव्यस्तहीनतः ।
द्वित्रिश्चतुःपञ्चधा तु चिन्दवः परिकीर्तिताः ॥ १
यदि प्रयोगो मेलापे क्वचित् प्रयोगको ध्रुवे ।
तदोद्ग्राहे च मुक्तिः स्याद् यदि प्रयोगकोऽन्तरे ।
तदा तु ध्रुवके मोक्ष एवं न्यासस्तु सर्वदा ॥ २

इति गीतमुद्राचिन्दुः ॥

स्यन्द्यपस्यन्दिताध्यर्धिस्थितावर्त्तादिमुख्यतः ।
वैशाखमण्डलालीढप्रत्यालीढादिभिस्तथा ॥ १
रेखा[1]सौष्ठवलास्याङ्गैः शिरोऽङ्घ्रिकररेचकैः ।
भावहावविलासैश्च सुलचित्रकलासतः ॥ २
चारुपाटानुगं चंचत्किङ्किणीध्वनिपेशलम् ।
तत्तज्जातियुतं वेषभाषासाहित्यशोभितम् ।
संप्रदायानुसरणं चिन्दुनृत्यं समाचरेत् ॥ ३
यत्र किङ्किणिकावाद्यैराहतिर्घर्घरो [2]मतः ।
पिडिवाटः शिरिपिडी पटवो लगपाटकः ।
शिरितिरः खलुखलुश्चेति घर्घरः षड्विधो मतः ॥ ४
दिशानयापरेऽप्यूह्या घर्घराः शोभयान्विताः ।
सर्वे घर्घरभेदास्ते कार्यास्तालानुगामिनः ॥ ५

इति चिन्दुनृत्यम् ॥

तैलङ्गभाषया बद्धा तूद्ग्राहाभोगवर्जिता ।
सा धरू कथिता धीरैः सा द्विधा परिकीर्तिता ॥ १
मुख्या तु कद्दडिधरू तथा मुक्तधरू परा ।
कद्दडिर्बन्धपर्यायस्त्वादौ तत्क्रममुच्यते ॥ २

1 Ms सौष्टुव. 2 Ms °र्थधरो.

अर्द्दिके[42] वाद्यमानेऽपि यत्र पात्रं धृताञ्चलम् ।
रङ्गं प्रविश्य तत्रादावालापेन तु नर्त्तनम् ॥ १

तत्तत्करादिभिः पाटैर्लयतालसमन्वितम् ।
धात्वादिरहितं गीतमालापः परिकीर्तितम् ॥ २

ततः स्यात् ससुलतुङ्गलास्याङ्गैश्च समन्वितम् ।
विचित्रचरणं साक्षाद्रागमूर्त्तिरिवाङ्गकैः ॥ ३

दर्शयन् पिल्मुरुकैमुर्वादिभिर्मध्यमध्यतः ।
त्रिचतुःपञ्चषट्सप्तधरूभिः सह पट्टिभिः ।
भावहावसुलास्याङ्गनर्त्तनं तनुयान् नटी ॥ ४

विलम्बितोच्चारमानं यदेकयतिसुन्दरम् ।
अतालं पदमेकं चेद् बद्धः कर्णाटभाषया ।
सा पट्टिः कथिता [43]तज्ज्ञै रसिकानन्ददायिनी ॥ ५

ततः कलासतो रम्यैर्द्रुतमानस्वरैः पुनः ।
कैमुरूशब्दतः पश्चाच्चित्रं नर्तनमाचरेत् ॥ ६

तालं तन्त्रीमृदङ्गानां समन्तान्मेलनं यदा ।
नर्माङ्गं नर्त्तनं यत्र सुलुपं तन्निगद्यते ॥ ७

तालतुल्यसुलूतुङ्गधर्घरध्वनिपेशलम् ।
पुनः कलासशब्देन द्विरावृत्तिपदेन च ॥ ८

विधाय नर्तनं त्वर्द्दिनाम्नि न्यासं समाचरेत् ।
तदा कद्दडि नृत्यं स्याद् देशी तैलङ्गदेशजा ॥ ९

नमनोन्नमनं तुङ्गमूर्ध्वाधः सौष्ठवस्य च ।
चतुर्विरामकैर्बद्धैः पदैरुद्ग्राहनिर्मितम् ॥ १०

तालेन येन केनापि युतं तत्पदसंज्ञकम् ।
एतदुक्ते विपर्यासाद्वा धरूकद्दडिर्मता ॥ ११

इति कद्दडिधरू ।

धरूपूर्वार्धके यत्र पिल्मिरूं संप्रयुज्य च ।
पुनः पूर्वार्धकं पश्चाच्चरमं नृत्यमाचरेत् ॥ १

42 Ms. अर्द्दिको. 43 Ms. तज्ञै°.

तालस्य लयभेदेन कतिवारं तु नर्तयेत् ।
अथवान्यधरूपूर्वपूर्वाः ड्डुंनतरा परा ।
तालद्रुतलयोऽप्यत्र सा प्रोक्ता मुक्तिकाधरू ॥ २

इति-मुक्तिकाधरू । धरूनृत्यम् ।

गीर्वाणमध्यदेशीयभाषासाहित्यराजितम् ।
त्रिचतुर्वाक्यसंपन्नं नरनारीकथाश्रयम्[44] ॥ १
शृङ्गाररसभावाढ्यं रागतालपदात्मकम् ।
पादान्तानुप्रासयुतं पादान्तयमकं तथा ॥ २
प्रतिपादं यत्र बद्धमेवं पादचतुष्टयम् ।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगान्तरध्रुवपदं स्मृतम् ॥ ३
गीयमाने ध्रुवपदे हावभावमनोहरे ।
नर्त्तनं तनुयात् पात्रं कान्तादृष्ट्यादिसन्मुखम् ॥ ४
नानागतिलसद्भावं लसल्लास्याङ्गसुन्दरम् ।
पदान्तरान्तरागा यद् दन्तोद्योतितरङ्गकम् ॥ ५
खण्डमानेन रचितं मध्ये मध्ये च कम्पनम् ।
सर्वाभिनयसंपन्नं रेखालावण्यशोभितम् ॥ ६
तदा ध्रुवपदं नृत्यं मुखरागविभूषितम् ।
स्यादक्षिभ्रूविकारादिशृङ्गाराकृतिसूचकः ।
सग्रीवरेचको हावो भावश्चित्तसमुद्भवः ॥ ७

इति ध्रुवपदम् ॥ इति निबन्धनृत्यम् ॥

अथानिबन्धनृत्यस्य क्रमं वक्ष्यामि लोकतः ।
नामावली यतिर्नेरिर्नेरिः सालङ्गपूर्वकः ॥ १
सङ्कीर्णनेरिर्भाषादिर्नेरिश्च नडनेरिकः ।
कैवर्तनं मुरूरङ्गे मुरू च तालरूपकम् ।
गुण्डालं कमलं मण्डी मुडुपं च पुरण्डरी ॥ २
कुडुपं तिर्यकरणं लावणी चटुकं ततः ।
नानादेशोद्भवा देशी तत्तद्दिक्शाख्रता इति ॥ ३

[लक्षणानि]

यथाभिनयसंपन्नं विचित्रगतिसुन्दरम् ।

---

44 Ms. °कृथा°.

तीवटिग्रहभेदेन लयतालसमन्वितम् ।
नामावली नृत्तमिदं नृत्येज्जनमनोहरम् ॥ १

इति नामावली ॥

विरामसाम्यगतिभिर्लीगैर्नानामनोहरैः ।
लयतालविचित्राङ्गैर्यतिनृत्तं समाचरेत् ॥ १

इति यतिः ॥

आदितालानुगं यत्र विलम्बितलयान्वितम् ।
विचित्रगतिसंपन्नं सामान्या नेरिरिष्यते ॥ १

[इति नेरिः]

सा एवायुतसंयुक्तहस्तैः सालङ्गनेरिका ॥ १

[इति सालङ्गनेरिः]

युक्तायुक्तैर्नृत्तहस्तैः सङ्कीर्णा नेरिरुच्यते ॥ १

[इति संकीर्णनेरिः]

रसभावाङ्गदृष्टयाद्यैर्भावनेरिः प्रकथ्यते ॥ १

[इति भावनेरिः]

स एव द्रुतमानेन नडनेरिरिति स्मृता ॥ १

[इति नडनेरिः]

मणिबन्धयुतौ हस्तौ भ्रामयेत् सविलासकम् ।
सव्यापसव्ययोर्यत्र तद्योग्यगतिसुन्दरम् ।
विद्ध्यान्नर्त्तनं सम्यक् तदा कैवर्त्तनाभिधम् ॥ १

[इति कैवर्तनम्]

यत्राङ्गं मोटयेत् तिर्यग् विक्षिप्ताक्षिप्तकौ मुहुः ।
त्रिपताकौ पुरा पात्रं सा मुरू कथ्यते बुधैः ॥ १

[इति मुरू]

उत्कटस्थो नटो गात्रं मोटयेद् द्रुतमानतः ।
वपुः पुनः पुनर्यत्र मुरूकं रट्टपूर्वकम् ॥ १

[इति रट्टमुरू]

किञ्चित्तालमुपक्रम्य प्रयोगे बहुलद्रुतम् ।
संकीर्णानिकगतिभिः प्रवृत्तं तालरूपकम् ॥ १

[इति तालरूपकम्]

जङ्घाया बाह्यमन्तर्यद्विदधद्भ्रमण द्रुतम् ।
तालानुगति नृत्तं चेद् गुण्डालं कथितं तदा ॥ १

[इति गुण्डालम्]

बहुभिर्बाहुभेदैश्च सालपल्लववर्त्तनैः ।
कटीपार्श्वशिरोरेख[45]पूर्वकं कमलं तदा ॥ १

[इति कमलम्]

पृष्ठाग्रसारिताभ्यां चेत् पादाभ्यां नतजानुकम् ॥ १

[इति नतजानुकम्]

पर्यायान्नर्तनं कुर्यात् तदा मण्डीति कीर्तिता ॥ १

[इति मण्डी]

यदा मुड्डपचारीभि[46]र्नृत्येत् तालानुरोधतः ।
तदा मुड्डपमित्युक्तं विचित्रगतिरञ्जितम् ॥ १

[इति मुड्डपम्]

मुड्डपस्थो नटो यत्र विधाय भ्रमरीं पुनः ।
पुनर्मुड्डपमानृत्य नृत्येच्चेत् सा मुरण्डरी ॥ १

[इति मुरण्डरी]

कुञ्चिताङ्गुलिना यत्र प्रसृताङ्गुष्ठकेन चेत् ।
प्रसार्य जङ्घिकां कम्पं विचित्रद्रुतमाचरेत् ॥
घर्घरीभिः समायुक्तं तदैतत् कुड्डुपं मतम् ॥ १

[इति कुड्डुपम्]

कञ्चित्करणमास्थाय विदध्याद्भ्रमरीं यदा ।
अवसाने पुनः कञ्चित्करणं समुपाश्रयेत् ।
एवं मुहुर्मुहुर्यत्र करणं तिर्यपूर्वकम् ॥ १

[इति तिर्यकरणम्]

---

45 Ms. रेख 46 Ms. नृत्ये°

समपादे स्थितं पात्रं कटिन्यस्तार्धचन्द्रकम् ।
कटेरुपरि तत्कायं भ्रामयेल्लावणी तदा ॥ १

[इति लावणी]

जानुभ्यां भूमिलग्नाभ्यां पद्भ्यां वा मण्डलाकृतिः ।
नम्रपृष्ठं लताहस्तौ पात्रं भ्रमणमाचरेत् ।
तदासौ चट्टुरित्युक्तः सूर्यमण्डलवद्गतिः ॥ १

[इति चट्टुः]

इत्यनिबद्धोरूपाणि ॥

यावनीभाषया युक्तं यत्र गीतं धृताञ्चलम् ।
कल्लादिगजराद्युक्तं कृत्याहगेन भूषितम् ॥ १

विदध्यान्नर्तनं नानालयत्रयविचित्रितम् ।
कोमलाङ्गैर्यदा नृत्यं भ्रमर्यादिविराजितम् ॥ २

सशब्दा च क्रिया यत्र ध्रुवशम्यादिभेदतः ।
यत्र चेष्टाविरहितं तन्नृत्तं जक्कडी मतम् ॥ ३

पारसीकैः पण्डितैस्तूद्ग्रहादिस्वरभाषया ।
तद् गीतं जक्कडीसंज्ञं यवनानामतिप्रियम् ॥ ४

[इति] जक्कडी ॥

मुरजादिषु वाद्येषु वाद्यमानेषु वादकैः ।
कुतूहलाय भूपानां वसन्ताद्युत्सवेषु चेत् ॥ १

क्रमाच्चत्वारि पात्राणि यद्वाष्टौ षोडशाथ वा ।
द्वात्रिंशद्वा चतुःषष्टिः सन्धीभूय वियुज्य च ॥ २

प्रनृत्यन्ति समादाय दण्डकौ पाणिपङ्कजैः ।
अङ्गुष्ठसम्मितौ स्थौल्ये दैर्घ्ये च षोडशाङ्गुलैः ॥ ३

स्वर्णादिधातुबद्धान्तौ सरलौ वर्तुलौ दृढौ ।
चित्रितौ वर्णकैर्ग्रन्थिवर्जितौ मसृणौ तथा ॥ ४

तत्तद्देशानुसारेण धृत्वा वा दण्डचामरे ।
दण्डक्षौमाञ्चले यद्वा दण्डकाछुरिकेऽथवा ॥ ५

चतुर्भिः प्रश्वभिर्घातैर्यद्वा षड्भिः प्रहारकैः ।
सशब्दघातभेदैश्च पुरतः पृष्ठतोऽपि च ॥ ६

पार्श्वयोरुभयोस्तद्वद् घातभेदैस्ततः परम् ।
चारीभिर्भ्रमरीभिश्च चित्रैस्तैर्वामसव्यतः ॥ ७

असकृन्मण्डलीभूय गीततालल्यानुगम् ।
तदोदितं बुधैर्दण्डरासं जनमनोहरम् ॥ ८

दण्डैर्विना कृतं नृत्यं रासनृत्यं तदेव हि ॥ ९

इति रासनृत्यम् । इत्यनिबन्धनृत्तम् ।



श्लोकपङ्क्ति–अनुक्रमणिका

[The first figure indicates the page number and the secon i figure the line number.]



पारिभाषिकाणां शब्दानामनुक्रमणी ।

GLOSSARY

[N. B. As said in the introduction, only one Ms. was available for the edition of this text, and so many obscurities have remained in it. Some of the terms which are probably Non-Indo-Aryan were discussed by me with my friend, Shri Ramanujacharya, who is a good scholar of the Southern dancing traditions. He was kind enough to explain some of these terms for which I express my thanks to him].

शब्दचालि – Cārī movement with Śabdas (sounds).

बिड्डलागव – One type of utplavana (jumping).

चिन्दु – a type of dance in South India.

घरू – Śabdam.

पट्टि – a kind of dance.

सुलू – a particular position in Dance.

सारी – Lāsya type of Kathakalī.

नेरी – a fundamental dance of Tāndava type.

भित्र – a fundamental dance of Lāsya type.

चित्र – a dance pose with Bhāva gīta.

नत्रक – Gatibhedam–a kind of dance.

तुल्ल – Talasañcara Sthānakam.

सीलुक – Vānarakriḍītam–an aṅgahāra pose.

होलू – Gṛdhralinaka–an aṅgahāra pose.

ध्रुवाडा – pose in Bhramaṇas.

चक्रबन्ध – Bandhana used in the abhinaya of Śṛṅgāra.

पिल्मिरू – flute (musical instrument).

दिंडिक – an instrument.

दिंड्ड – a sound from Diṇḍika.

चिन्दु – Dravidan dance ascribed to gods or goddesses in Daśarā.

शुद्धचिन्दु – a dance without melapāni.

चिन्दु चिन्दु – Dance with melapāni.

तिरुवणीचिन्दु – Dravidian śabdas ascribed to some king.

कलास – the last tāla in the series of Tālas.

Some parallel verses occuring in Bharatārṇavam*–an unpublished work attributed to Nāndikes'vara.

अ. ३. नृत्याध्याय–

सशब्दा च क्रिया यत्र ध्रुवशं यादि भेदतः ।
यत्र चेष्टा विरहितं तन्नृत्यं जक्कडी मतम् ॥

(Compare नृत्तसंग्रह Page 21, V. 3)

तालग्रहानङ्घ्रिपदैः समादिश्य यथोचितम् ।
अनेनैव प्रकरेण गीतनृत्यं समाचरेत् ॥

(Compare नृत्तसंग्रह Page 15 V. 4)

पादाभ्यां दर्शयेत् तालं लयाच्छब्दाक्षराण्यलम् ।
नृत्येत् तदा शब्दनृत्तं नृत्तवद्भिरुदीरितम् ॥

(Compare नृत्तसंग्रह Page 13 V. 6)

समपादे स्थितं पात्रं कटिन्यस्तार्धचन्द्रकम् ।
कटेरुपरि तत्कायं भ्रामयेल्लावणी तदा ॥

(Compare नृत्तसंग्रह Page 21. V. 1)

मुरजादिषु वाद्येषु वाद्यमानेषु वादकैः ।
कुतूहलाय भूपानां वसन्ताद्युत्सवेषु चेत् ॥

(Compare नृत्तसंग्रह Page 21. V. 1)

Comparable verses from the Bharatakośa*

अडालहुरुमयी – स्थललागनृत्तम्––

अडालाद्या हुरुमयी वामपादेन भूतले ।
यदा तिष्ठेन्निगदिता गणने तण्डुना तदा ॥ वेदः

(See Bharatakośa P. 9. and
Nṛttasamgraha अडालुर्होर्मयी P. 11)

करणनेरिः – देशीनृत्तम्––

सिंहाकर्षं चावहित्थं निवेशं चैलकादिके ।
क्रीडितं च तुरीयं स्याज्जनितं पञ्चमं तथा ।
षष्ठं चोपसृतं प्रोक्तं तलसंघट्टितं ततः ।
उद्वृत्तं चाष्टमं प्रोक्तं विष्णुक्रान्तं च लोलितम् ।
मदस्खलितसंभ्रान्ते विस्रम्भोद्घट्टिते ततः ।
प्रान्ते तलविलासं च प्रोक्तं पञ्चदशाभिधम् ।
रासतालेन मानेन मध्यमेन मनोरमः । वेदः ।

* I am indebted to Śri Rāmānujāchārya for finding out these verses from the manuscript in his possession.

* Ramakrishna Kavi, M.A. T. T. D. Press, Tirupati, 1951.

एतदन्यथोक्त देवेन्द्रेण, यथा--

करणैः पञ्चदशभिर्युक्तः करणनेरिकः ।
सिंहाकर्षितमादौ स्यात्ततस्तलविलासितम् ।
वृश्चिकं च ततः प्रोक्तमन्यद्वृश्चिककुट्टितम् ।
लतावृश्चिकसंज्ञं स्याद्दण्डरेचितकं ततः ।
दण्डपक्षं चोर्ध्वजानु तलसंस्फोटिताभिधम् ।
विद्युद्भ्रान्तं दण्डपादं ललाटतिलकाभिधम् ।
एतानि द्वादशोक्तानि पूर्वेषां मततो यथा ।
जानुवेष्टनसंज्ञं च कराङ्घ्रिस्वस्तिकं तथा ।
अन्तश्छायाभिधं प्राहुस्त्रीणि पद्धतिकोविदाः । देवेन्द्रः ।

(See Bharatakośa P. 112 and
Nṛattasamgraha P. 7 Lines 150-155)

कलासः – देशीनृत्ताङ्गम्--

विविधैः पाटशब्दैश्चालङ्कृतं यतिमिश्रितम् ।
मध्ये पिल्लमुरूयुक्तं ग्रहश्चापि मनोहरम् ।
कलासरूपकं प्रोक्तं सङ्गीतज्ञैः पुरातनैः । वेदः ।

(See Bharatakośa P. 112 and
Nṛttasamgraha P. 16 Line 391)

कातरा – देशीचारी--

नन्द्यावर्तस्थितौ पादौ पश्चाच्चेदपसर्पतः ।
सा चारी कातरा प्रोक्ता देशीनृत्तविचक्षणैः । वेमः ।

(See Bharatakośa P. 126
Nṛttasamgraha P. 5 Line 87)

कुलीरिका – देशीचारी--

नन्द्यावर्ताभिधे स्थाने स्थितौ तिर्यक् प्रसर्पितौ ।
चरणौ यत्र तां चारीं कथयन्ति कुलीरिकाम् । वेमः ।

(See Bharatakośa P. 144 and
Nṛttasamgraha P. 4 Line 62)

चक्रबन्ध – काडनृत्तम्--

पिण्डः स्याच्चतुर्दशभिर्बिन्दुभिरथ ऊर्ध्वतः ।
दक्षहस्ते ब्रह्मतालो ईडावान् वामहस्तके ॥
दक्षाङ्घ्रौ सिंहलीलश्च वामाङ्घ्रौ यतिशेखरः ।
सकृद्रूपं ब्रह्मताले स्यादीडावान् द्विवारतः ॥
सिंहलीलो द्विवारं स्यादेकधा यतिशेखरः ।
अधश्चोर्ध्वं पिण्डबिन्दौ स्यात्समाङ्गेन योजनम् ॥

एवं प्रथमखण्डः स्याद् द्वितीयमधुना ब्रुवे ।
इडावान् दक्षहस्ते च दक्षाङ्घ्रौ ब्रह्मतालकः ॥
वामाङ्घ्रौ सिंहलीलश्च तत्पाणौ यतिशेखरः ।
पूर्ववद्योजनं पिण्डं तृतीयं खण्डमुच्यते ॥
यतिशेखरतालस्तु दक्षपाणावलङ्कृतः ।
ईडावान् दक्षपादे च वामाङ्घ्रौ ब्रह्मतालतः ॥
वामहस्ते सिंहलीलः चतुर्थं रूपमुच्यते ।
दक्षपाणौ सिंहलीलो दक्षाङ्घ्रौ यतिशेखरः ॥
ईडावान् वामपादे च तत्पाणौ ब्रह्मतालकः ।
एवं चतुर्धा तालानां पिण्डे भवति योजनम् ।
चक्रबन्धेति विज्ञेयः काडस्तालविचक्षणैः ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa P. 195 and
Nṛttasamgraha P. 8 Lines 180-185)

चित्रम् – करणम्–

पादेन भ्रमरीं कुर्वन् भ्रामयेच्चापि मध्यमम् ।
हस्तौ च भ्रामितौ स्यातां करणं चित्रसंज्ञकम् ॥ देवणः ।

चित्रम् – देशीनृत्तम् (उडुपाङ्गम्)–

चित्रं तत्साद्वर्धमानस्थानकेन गतिस्तथा ।
तिर्यङ्मुखा त्रिपताको मल्लिकामोदतालतः ॥
दक्षिणे च तथा वामे मकरौ हृदि चञ्चला ।
पूर्वमुक्ता गतिश्चान्ते तिरिपभ्रमरी भवेत् ।
तत्कराणं चमत्काराच्चित्रमित्यभिधीयते ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa Pages 207-208 and
Nṛttasamgraha P. 7, Nines 160-165)

छत्रभ्रमरी – भ्रमरी–

स्थितैकेनाङ्घ्रिणा भूमौ दण्डवच्चोत्क्षिपेत् परम् ।
सव्यावर्तं भवेद्यत्र सा छत्रभ्रमरी मता ॥ कुम्भः ।

(See Bharatakośa Page 217 and
Nṛttasamgraha Page 12-13, Lines 304-310)

जकरी – देशीनृत्तम्–

यवन्या भाषया युक्तं यत्र गीतं सुनिश्चलम् ।
कौलादिगजरायुक्तं महाङ्गेन विभूषितम् ॥
विदध्यान्नर्तनं नानालयत्रयविचित्रितम् ।
कोमलाङ्गैर्यदा नृत्यं भ्रमर्यादिविराजितम् ॥

सशब्दादिक्रिया यत्र ध्रुवझम्पादिभेदतः ।
यत्र चेष्टाविरहितं तन्नृत्तं जक्री मतम् ॥

पारसीकैः पण्डितैस्तु उद्ग्राहः स्वस्वभाषया ।
यद्गीतं जक्रीसंज्ञं यवनानामतिप्रियम् ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa P. 222 and
Nṛttasamgraha P. 21)

जारमान – देशीनृत्तम् (उड्डुपाङ्गम्)-

उत्कटस्थानके तत्स्यात् खण्डसूच्यावनीं व्रजेत् ।
आदितालेन वामोर्ध्वे त्रिपताकोऽथ दक्षिणः ॥

हस्तपार्श्वगतस्तिर्यक् त्रिपताकस्तथा त्विदम् ।
दक्षिणाङ्घ्रे द्विवारं स्याच्चतुरश्रं ततः श्रयेत् ॥

सव्यवामपताकौ च स्वे स्वे पार्श्वे प्रसारयेत् ।
गृहीत्वा तिरिपं पश्चादेवमङ्घ्रान्तरेण तु ॥

भवत्येवं सम्मुखं च सव्यास्यो दक्षिणां गतः ।
गृहीत्वा पूर्ववद्दक्षपादं वामस्तु संस्थितः ॥

तेनैवाङ्घ्रिन तिरिपस्ततो वाममुखो भवेत् ।
ततः सम्मुखमास्थाय समसूच्यां पताकयोः ॥

प्रसारणं तु हृदये शिखरद्वयमाचरेत् ।
एवं द्विवारं कृत्वा च दक्षपादं निवेशयेत् ॥

उपरिष्टाद्वामजानोर्दक्षिणावर्ततो भ्रमेत् ।
मण्डिभ्रमरिका सा स्यादेवमङ्घ्रान्तरे भवेत् ॥

ततो वामाङ्घ्रिसूचीं च वामपार्श्वे प्रसारयेत् ।
अलपद्मद्वयं दक्षपार्श्वतश्च प्रसारयेत् ॥

ततः सव्यपदे सूचीं सव्यपार्श्वे प्रसारयेत् ।
परिवृत्यालपद्मौ च वामपार्श्वे प्रसारयेत् ॥

अलपद्मस्वस्तिकं तद्विधाय वामपार्श्वतः ।
अलपद्मद्वयं दक्षपादसूच्या सहैव तु ॥

भ्रामयन्मण्डलाकारमुल्बणौ वामपार्श्वतः ।
कृत्वा दक्षिणसूच्याश्च वलनत्रयमाचरेत् ॥

ततः पताकप्रसरं सव्यं कृत्वा तकारणम् ।
हृदि वामं च शिखरं तदा स्याज्जारमानकम् ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa P. 229 and
Nṛttasamgraha P. 9, Nine 115)

ढेङ्की – धावनलागनृत्तम्–

वामः पुरोऽपरः पार्श्वे पादौ तालद्वयान्तरे ।
पताकौ प्रसृतौ तिर्यक् स्थित्वा स्थित्वा तु धावनम् ॥
कुट्टनं वामपादस्योत्प्लुतिं कृत्वा पदद्वये ।
विरलावूर्ध्वगौ पादौ दक्षिणेन पदा पतेत् ।
भूमौ यदा तदा ढेङ्की कथिता पूर्वसूरिभिः ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa P. 238 and
Nṛttasamgraha P. 12, Line 293)

ताण्डवं – नृत्तम्–

आसारितादिभिर्गीतैरुद्धतप्रायवर्तितैः ।
करणैरङ्गहारैश्च निवृत्तं विषमैरिह ।
ताण्डवं तण्डुना प्रोक्तं नृत्तं नृत्तविदो विदुः । कुम्भः ।

(See Bharatakośa P. 243 and
Nṛttasamgraha P. 10, Line 240)

तिरिपभ्रमरी – भ्रमरी––

अङ्घ्रिस्वस्तिकमादाय तिर्यग्भ्रमणतो भवेत् । कुम्भः ।
कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्य पार्श्वेनाक्षिप्य पृष्ठतः ।
अन्याङ्घ्रेः स्वस्तिकं कृत्वा शरीरं भ्रामयेद्यदा ॥
तिर्यग्यद्दण्डपक्षाभ्यां यथा स्यात् स्वस्तिकच्युतिः ।
तिरिपभ्रमरीत्येषा तदा तज्ज्ञैर्निगद्यते ॥ ज्यायनः ।

(See Bharatakośa P. 251 and
Nṛttasamgraha P. 13 Line 308)

तिर्यङ्मुखा – देशीचारी––

स्थानके वर्धमानाख्ये स्थित्वा पादौ प्रसर्पतः ।
सव्यापसव्ययोस्तूर्णं यत्र तिर्यङ् मुखा तु सा ॥ वेमः ।

(See Bharatakośa P. 251 and
Nṛttasamgraha P. 4–7, Lines 83–161)

तिवटम् – देशीनृत्तम्––

नवर्जिततवर्गेण क्वचित्क्वचित् ।
निर्मितं बिन्दुना वर्ज्यमिति तादिग्रहोत्तमम् ॥
तालावृत्तानुगम्भीरैः तिवटं परिकीर्तितम् । वेदः ।

(See Bharatakośa P. 251–252 and
Nṛttasamgraha P. 19, P. 475)

तुल्लम्—

सपादेनादितालेन धृत्या सव्यापसव्ययोः ।
स्वस्तिकीकृत्य जंघे चेद् भ्राम्येतां कर्तरीं जगुः ॥
राजतालेन तालेन नर्तनं सर्वदिङ्मुखम् ।
सौष्ठवाधिष्ठितं यत्र तत्तुल्लमभिधीयते ॥

(See Bharatakośa P. 847)

तुल्लम् – देशीनृत्तम् (उड्डपाङ्गम्)--

हृदये शिखरद्वन्द्वं कुञ्चिते स्थानके ततः ।
चतुरश्रे स्थानके च पर्यायेण पताककौ ॥
अधः प्रसार्य वामोऽङ्घ्रिः स्थाप्यस्तेन सहैव तु ।
वामोऽलपद्मः पुरतः प्रसार्याधः पताककः ॥
हृदये वामशिखरं प्रसृतं च पताककम् ।
दक्षिणे तुल्लमुद्दिष्टं आदितालेन सूरिभिः ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa P. 255 and
Nṛttasamgraha P. 9, Lines 218-221)

ध्रुवपदनृत्तम् – देशीनृत्तम्—

गीयमाने ध्रुवपदे गीते भावमनोहरे ।
नर्तनं तनुयात् पात्रं कान्ताहास्यादिदृष्टिजम् ॥
नानागतिलसद्भावमुखरागादिसंयुतम् ।
सुकुमाराङ्गविन्यासं दन्तोद्योतितहावकम् ॥
खण्डमानेन रचितं मध्ये मध्ये च कम्पनम् ।
यत्र नृत्यं भवेदेवं ध्रुपदाख्यं तदा भवेत् ॥
प्रायशो मध्यदेशीयभाषया यत्र धातवः ।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगास्त्रय एते भवन्ति ते ॥
उद्ग्राहरहितं केचित् परे त्वाभोगवर्जितम् ।
उद्ग्राहाभोगरहितमन्वर्थमपरे जगुः ।
स्यादक्षिभ्रुविकारादिश्शृङ्गाराकृतिसूचके ॥ वेदः ।

(See Bharatakaśa P. 299 and
Nṛttasamgraha P. 15, Line 376)

नडनेरिः – देशीनृत्तम्—

द्रुतमानादादितालाद् भूयो भूयो विवर्तनम् ।
लोलितं भ्रमरं यत्र नडनेरिः स उच्यते ॥ दामोदरः ।
संहतस्थानके सूलं गृहीत्वा शिखरं हृदि ।
कृत्वा तत्तत्सौष्ठवेन कुर्यात्तु तलदर्शिनी ॥

पताकौ पार्श्वयोः पश्चाच्छनकैश्च प्रसारयेत् ।
पुनः शनैः पताकौ च तावानीय शिरो हृदि ॥
कृत्वा ततो दक्षवामपर्यायेण द्विवारकम् ।
ततः पताकः प्रसरः कुर्याच्च तदनन्तरम् ॥
चतुर्दिक्षु प्रसरणं पताकस्य ततः परम् ।
पर्यायेण पञ्चपदी सूलू ग्राह्या पुनस्ततः ॥
पर्यायेण भ्रमिद्वन्द्वात्मकस्तु कृतकालतः ।
वामदक्षिणयोः पश्चात् पार्श्वयोस्तिरिपं भवेत् ।
ततस्तु मलकं कृत्वा विधेयं तु तकारणम् ॥ वेदः ।

(See Bharatakaśa P. 306 and
Nṛttasamgraha P. 19, Line 490)

नत्रम् – देशीनृत्तम् (उडुपाङ्गम्)—

नन्द्यावर्तं स्थानकं स्यान्मराला चारिका तथा ।
ललितो भ्रमरो हस्तो नत्रं स्यात् समतालतः ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa P. 306 and
Nṛttasamgraha P. 8, Lines 168–169)

नागबन्धः – नृत्तबन्धः—

योऽस्मिंस्तृतीयपङ्क्तेस्तु द्वितीयं स्थानमाश्रिता ।
नर्तकी तु द्वितीयस्याः प्रथमं स्थानमाश्रयेत् ॥
ततः प्रथमपङ्क्तेस्तु क्रमात् स्थानचतुष्टयम् ।
प्राप्य तुर्यं द्वितीयायाः तृतीयस्यास्तृतीयकम् ॥
क्रमाद् व्रजेदेवमन्या चरेद्विनिमयेन च ।
नागबन्धं समाचष्ट तं सङ्ग्रामधनञ्जयः ॥ वेमः ।

(See Bharatakośa P. 313 and
Nṛttasamgraha P. 9)

नामावली – देशीनृत्तम्—

समे स्थित्वा स्थाने यदि भवति सूलू सुललिता,
करौ स्वान्ते कृत्वा रुचिरशिखरौ योगसहितौ ।
ततः पार्श्वे सव्ये प्रसरति लताख्ये यदि भवेत्,
करौ व्यावृत्यासौ हृदि शिखरतामेति सपदि ॥

पुरः पार्श्वतो दक्षवामौ पताकौ,
यदा प्रसृतौ तद्यक्षवामेऽलपद्मौ ।
कृतौ हंसवक्त्रौ पुरस्तौ विधेयौ,
करौ चालपद्मौ हृदिस्थौ पुनस्तौ ॥

भवेदादितालेन तत्कारपूर्वक्रमोयं सदा देवनामावलीनाम् ।
विनोदास्तु तासां सदा संप्रयुक्तश्चतुःपञ्चषट्खण्डकैः कोहलेन ॥
वेदः ।

(See Bharatakośa P. 327 and
Nṛttasamgraha P. 19, Lines 475–476)

नेरिः – देशीनृत्तम्—

आदितालानुगं यत्र विलम्बितलयान्वितम् ।
रेखामुद्राप्रमाणाद्यं नानाकरविभूषितम् ।
द्विचत्रगभिमुखं नृत्तं नेरिरित्यभिधीयते ॥ दामोदरः ।

(See Bharatakośa P. 341 and
Nṛttasamgraha P. 19, Lines 481–482)

पट्टिनृत्तम् - देशीनृत्तम्—

पदमेकं तालहीनं बद्धं त्रैलिङ्गभाषया ।
पूर्वस्वरोच्चार्यमाणं यदेकयतिसंयुतम् ।
पट्टिः सा कथिता तज्ज्ञैर्विदग्धानां मनोहरा ॥ दामोदरः ।

(See Bharatakośa P. 348 and
Nṛttasamgraha P. 17, Lines 426–430)

पद्मबन्धः – नृत्तबन्धः —

स्थाने स्थिता द्वितीयस्यास्तृतीयं पदमाश्रयेत् ।
तृतीयायाश्चतुर्थं च चतुर्थ्याश्च द्वितीयकम् ॥
स्थानक्रमाद् व्रजेदेवं द्वितीया पङ्क्तिरिष्यते ।
तृतीयपङ्क्तेराद्यस्था द्वितीयाया द्वितीयकम् ॥
आद्यायाश्च तृतीयं च चतुर्थं च क्रमाद् व्रजेत् ।
एवं तृतीयपङ्क्तिः स्यादथ तुर्याद्यमाश्रिता ॥
तद्द्वितीयं पदं प्राप्य तृतीयायास्तृतीयकम् ।
द्वितीयायाश्चतुर्थं च क्रमाद्गच्छेदियं पुनः ॥
चतुर्थी पङ्क्तिरेवं तु चतस्रः पात्रपङ्क्तयः ।
मिथश्चरन्ति मिलिता एवं विनिमयाद् पृथक् ।
तं पद्मबन्धमाचष्ट रूपनारायणो नृपः ॥ वेमः ।

(See Bharatakośa P. 354 and
Nṛttasamgraha P. 9, Lines 196–199)

पिल्लमूरू – देशीनृत्तम्—

गीततालानुगो यत्र नानावाद्यविनिर्मितः ।
अल्पो यः शब्द खण्डो हि थां-तो-धि-दिग-णान्तकः ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa P. 370 and
Nṛttasamgraha P. 17, Line 425)

प्रबन्धनृत्तम्—

षडङ्गादिप्रमाणेन प्रबन्धाध्यायसंमताः ।
कृता वाग्गेयकारैस्तु तेषां खण्डानुसारतः ॥
स्वराणां पाटशब्दानां तेनकानां लयेन च ।
संगीतोक्तक्रमेणैव पदानां भावदर्शनम् ।
ये प्रबन्धाः पुरा प्रोक्ताः तेषां नर्तनमाचरेत् ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa P. 390 and
Nṛttasamgraha P. 2, Line 4)

प्रसरम् – देशीनृत्तम् (उडुपाङ्गम्)—

चतुरश्रस्थानके च शिखरद्वितयं हृदि ।
आविद्धवक्रहस्ताभ्यां पार्ष्णिरेचितयान्वितम् ॥
मध्यसञ्चेन प्रसरमादितालाच्च यद्भवेत् ।
सव्यः पताकः प्रसृतः पार्श्वे वामः पुरो गतः ॥
पताकः स्याद्विपर्यासादङ्गानां प्रसरे भवेत् ।
मण्डलस्थानके पार्श्वे पताकौ प्रसृतौ यदि ॥
तत्तत्स्थाने कुञ्चितके शिखरद्वितयं हृदि ।
समसूच्या भुवं गत्वा सौष्ठवेन यदा भवेत् ॥
पुनः पश्चात्प्रचलनमाविद्धप्रसृतौ करौ ।
व्यावृत्य पुरतः पश्चात् परिवर्तनतो भवेत् ॥
संहृत्स्थानके स्थित्वा भ्रमरीमाचरेत्ततः ।
प्रान्ते च चतुरश्रं स्यात् प्रसरोडुपमुच्यते ॥ वेदः ।

(See Bharatakoṣa P. 396 and
Nṛttasamgraha P. 9, Lines 222–225)

बाह्यभ्रमरी – भ्रमरी—

दक्षिणेनाङ्घ्रिणा स्थित्वा वाममङ्घ्रिं तु कुञ्चयन् ।
वामावर्तं भवेद्यत्र सा बाह्यभ्रमरी मता ॥ वेदः ।
सव्येतरेण पादेन स्थित्वा सव्याङ्घ्रिकुञ्चनात् ।
सव्यावर्तं भ्रमेद्यत्र सा बाह्यभ्रमरी मता ॥ कुम्भः ।

(See Bharatakośa P. 419 and
Nṛttasamgraha P. 11, Line 254)

भित्रम् - देशीनृत्तम् (उडुपाङ्गम्)—

कुञ्चिते स्थानके स्थित्वा यदा नूपुरपादिका ।
वामोऽधोमुखमंसास्यः अलपद्मः प्रकम्पितः ॥
पादः प्रसारिताग्रस्थः त्रिपताकः शिरः स्थितः ।
दक्षिणे प्राग्गतिर्नीत्वा तथा वामे च चारिवत् ॥
नूपुराङ्गविपर्यासाद्भ्रमरी रचिता यदा ।
कीडातालेन विहितं तद्भित्रमभिधीयते ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa P. 438 and
Nṛttasamgraha P. 7, Lines 157–159)

मूरू – देशीनृत्ताङ्गम्—

हृदये वामशिखरं स्थाप्य सव्यपताककम् ।
दक्षपार्श्वे प्रसार्याथ दक्षिणावर्ततस्ततः ॥
भ्रमरीमाचरेत् पश्चादेकपादोपरि स्थितः ।
नम्रोभूत्वा त्रिपताकं पुरतश्च प्रसारयेत् ॥
हृदि वामं च शिखरं न्यस्य स्कन्धानतं शिरः ।
वलनद्वितयं कुर्यादन्ते स्याच्च तकारणम् ।
मूरूलक्षणमित्युक्तं सङ्गीतज्ञैः पुरातनैः ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa P. 500 and
Nṛttasamgraha P. 19, Lines 497–498)

रथचका – देशीचारी—

स्थाने तु चतुरस्राख्ये स्थित्वा श्लिष्टौ परस्परम् ।
पुरतः पृष्ठतो वापि चरणौ चेत् प्रसर्पतः ।
यत्रैषा रथचक्राख्या चारी तु परिकीर्तिता ॥ वेमः ।

(See Bharatakośa P. 524 and
Nṛttasamgraha P. 7, Line 142)

रायबङ्गालः – देशीनृत्तम् ।

सुळूं बध्वैकपादेन दक्षपादेन कुट्टनम् ।
तत उत्प्लुत्य चरणावूर्ध्वं च विरलीकृतौ ॥
अन्तराले भ्रामयित्वा निपतेद्धरणीतले ।
रायबङ्गालध्वाडोऽयं कथितः पूर्वसूरिभिः ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa P. 550 and
Nṛttasamgraha P. 11, Lines 266–272)

शब्दचाली(लिः) – देशीनृत्तम्—

प्राग्वत् कृत्वा स्थानहस्तौ मध्यलङ्घेन नर्तकः ।
यत्र स्थित्वैकपादेन शब्दवर्णानुगामिनीम् ॥
गतिं नयेद् द्वितीयेन दक्षिणाध्वनि शोभनम् ।
तद्वत्पादान्तरेणाथ क्रमेणैतद्द्वयोर्यदा ॥
पर्यायेण गतिं कुर्याद्वार्तिकादिषु पञ्चसु ।
मार्गेष्वसौ शब्दचाली पण्डितैश्च निरूपिता ॥

अथवा

मार्गतालक्रमेणैव रासतालेन नर्तनम् ।
शब्दचालिस्तथा प्रोक्ता लक्ष्यदृष्ट्या विचक्षणैः ॥ दामोदरः ।

(See Bharatakośa P. 656 and
Nṛttasamgraha P. 2, Line 17)

सङ्कीर्णनेरिः – देशीनृत्तम्—

स्थानैः संहतकादिषोडशमुखैश्चारीभिराससभिः,
त्रिंशत्सप्तमितैर्युतैरमिलितैरन्यैस्त्रिभिर्हस्तकैः ।
दृग्भेदैः करणैर्वरैरथशिरोभेदाङ्गहारैः स्फुटा,
सङ्कीर्णा गदिता बुधैर्नटमुदे नेरिर्मनोहारिणी ॥ वेदः ।

(See Bharatakośa P. 691 and
Nṛttasamgraha P. 19, Line 487)

सालङ्गनेरिः – देशीनृत्तम्—

सालङ्गनेरिः स ज्ञेयो युतायुतकरैः कृतः । वेदः ।

(See Bharatkośa P. 723 and
Nṛttasamgraha P. 19, Line 484–85)

सूलू – देशीनृत्तम्—

पक्षः समस्थितः पृष्ठे द्विवितस्तिः पुरः पुरः ।
सूलूस्थानकमेतत् स्यादेवं चरणरक्षणा ॥
पुरतः परितो वामः पताकोऽन्यस्तु पार्श्वतः ।
दक्षिणाभ्रमणात् सूलूं द्वित्रिवारं चरेत्ततः ॥
इति ध्वाडनत्ते सूडलक्षणम् । देवेन्द्रः ।

(See Bharatakośa P. 737–38 and
Nṛttasamgraha P. 17, Line 436)

सूलूपम् – देशीनृत्तम्—

किन्नरीतालसंयुक्तं तेन शब्देन नर्तनम् ।
मृदङ्गादियुतं यत् स्यात् सूलूपं तन्निगद्यते ॥ दामोदरः ।

(See Bharatakośa P. 738 and
Nṛttasamgraha P. 17, Line 434)

***

शुद्धिपत्रक

	Read as	Line	Page
मन्यमो	मध्यमो	६10·1268 (footnote)	1
१३, ४०	१४, 40	40	3
चायी	चार्या	80	4
व्राह्य	बाह्य	47	7
कोप्पल	कोत्पल	50	7
सवालककर	सवालमकर	62	7
पक्षिसालुवः	पक्षिसुलवः	73	11
56	55	55	11
तदाडालु	तदाऽडालु	77	11
समुत्प्लुत्य	समुत्प्‌लुत्य	90	12
65	95	95	12
क्कचित्	क्वचित्	399	16
उरुपेष्वेपि	उरुपेष्वपि	16	23
Omit	* at the end	—	24

***

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रकाशित ग्रन्थ

१ प्रमाणमञ्जरी – तार्किकचूड़ामणि सर्वदेव। २ यन्त्रराजरचना – महाराजाधिराज जयसिंहदेव कारिता। ३ कान्हडदे प्रबन्ध – महाकवि पद्मनाभ। ४ क्यामखांरासा – नवाब अलफखां (कविवर जान)। ५ लावारासा – चारण कविया गोपालदान। ६ महर्षिकुलवैभवम् – विद्यावाचस्पति स्व० श्री मधुसूदनजी ओझा। ७ वृत्तिदीपिका – मौनि कृष्णभट्ट। ८ राजविनोद काव्य – कवि उदयराज। ९ तर्कसंग्रहफक्किका – क्षमाकल्याणगणी। १० नृत्तसंग्रह – अज्ञातकर्तृक।

प्रेस में

१ त्रिपुराभारतीलघुस्तव – सिद्धसारस्वत लघुपण्डित। २ बालशिक्षा व्याकरण – ठक्कुर संग्रामसिंह। ३ करुणामृतप्रपा – महाकवि ठक्कुर सोमेश्वरदेव। ४ पदार्थरत्नमञ्जूषा – पं० कृष्णमिश्र। ५ शकुनप्रदीप – पं० लावण्यशर्मा। ६ उक्तिरत्नाकर – पं० साधुसुन्दर गणी। ७ प्राकृतानन्द – पं० रघुनाथ कवि। ८ ईश्वरविलासकाव्य – पं. कृष्णभट्ट। ९ चक्रपाणिविजयकाव्य – पं० लक्ष्मीधर भट्ट। १० काव्यप्रकाश – भट्ट सोमेश्वर। ११ कारकसंबन्धोद्योत – पं० रभसनन्दी। १२ शृंगारहारावलि – हर्षकवि। १३ कृष्णगीतिकाव्यानि – कवि सोमनाथ। १४ नृत्यरत्न कोश – महाराजाधिराज कुंभकर्णदेव। १५ नन्दोपाख्यान – अज्ञातकर्तृक। १६ चान्द्रव्याकरण – चन्द्रगोमी। १७ शब्दरत्नप्रदीप – अज्ञातकर्तृक। १८ रत्नकोश – अज्ञातकर्तृक। १९ कविकौस्तुभ – पं० रघुनाथ मनोहर। २० एकाक्षरकोशसंग्रह – विविधकविकर्तृक। २१ शतकत्रयम् – भर्तृहरि, धनसारकृत व्याख्यायुक्त। २२ वसन्तविलास – अज्ञातकर्तृक। २३ दुर्गापुष्पाञ्जलि – म० म० पं. दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी। २४ दशकण्ठवधम् – म० म० पं० दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी। २५ गोरा बादल पदमिणी चऊपइ – कवि हेमरतन। २६ बांकीदासरी ख्यात – महाकवि बांकीदास। २७ मुंहता नैणसीरी ख्यात – मुंहता नेणसी इत्यादि।

प्राप्तिस्थान – सञ्चालक, राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर।